सन्त-मार्ग

– चरणसिंह

राधास्वामी सत्संग ब्यास

सन्त-मार्ग

★

दास,
चरणसिंह

★

राधास्वामी सतसंग, ब्यास
(ज़िला अमृतसर, पंजाब)

प्रकाशक:
के. एल. खन्ना
सेक्रेटरी
राधास्वामी सत्संग, ब्यास
(जिला अमृतसर, पंजाब)

★

★

प्रथम संस्करण अप्रेल, १९६८–५,०००
द्वितीय संस्करण अक्टूबर, १९६८–१०,०००
तृतीय संस्करण दिसम्बर, १९७०–२०,०००

★

मुद्रक:
लिबरटी आर्ट प्रेस, दिल्ली

प्रकाशक की ओर से

सन्त-मार्ग में राधास्वामी सत्संग ब्यास के सन्त-सतगुरु महाराज चरणसिंहजी ने सन्तमत के मूल सिद्धान्तों को सरल और बोल-चाल की भाषा में समझाया है। वैसे यह पुस्तक आपके द्वारा संकलित 'सन्तों की वाणी' की प्रस्तावना के रूप में लिखी गई है, किन्तु अध्यात्म के जिज्ञासुओं के लाभार्थ इसे अलग पुस्तक के रूप में भी प्रकाशित किया गया। यह पुस्तक बहुत लोक-प्रिय हुई और पहला संस्करण दो महीनों में समाप्त हो गया। पाठकों की सेवा में यह दूसरा संस्करण प्रस्तुत है।

के० एल० खन्ना
सेक्रेटरी

डेरा बाबा जैमलसिंह
अक्टूबर, १९६८

सन्त-मार्ग

शकर खंड नवात गुड़ माखियों माझा दुद्ध ।
सब्बे वसतु मिट्ठियाँ, रब न पुजन तुद्ध ।।

(बाबा फरीद)

(शक्कर, खाँड, मिश्री, गुड़, शहद, भैंस का दूध, ये सब चीजें मीठी हैं, लेकिन हे परमात्मा ! इनमें से कोई भी तुझ तक नहीं पहुँचती अर्थात् तेरी मिठास को नहीं पहुँचती ।)

महात्मा चाहे किसी जाति, धर्म, देश या समय में क्यों न आये हों, सबका एक ही सन्देश और एक ही अनुभव है । वे दुनिया में जाति और धर्म बनाने के लिए नहीं आते, न ही हमें एक-दूसरे से लड़ना-भिड़ना सिखाने आते हैं, बल्कि वे हमारे अन्दर मालिक की भक्ति का शौक व प्यार पैदा करने और इस देह के बन्धनों से मुक्त करके हमें मालिक से मिलाने के लिए ही आते हैं । लेकिन हम दुनिया के जीव ऐसे मालिक के भक्तों के जाने के बाद बाहरमुखी हो जाते हैं, कर्म-कांड में उलझ बैठते हैं और उन महात्माओं के असली अनुभवों और उपदेशों को बिल्कुल भूल जाते हैं । उनकी असली शिक्षा और रूहानियत को जातियों और देशों के छोटे-छोटे दायरों में बन्द करने की कोशिश करते हैं और एक-दूसरे से लड़ना-भिड़ना शुरू कर देते हैं । जिन महात्माओं की शिक्षा सारे संसार के लिए होती है, उनके उपदेश को जब हम छोटे-छोटे दायरों में बन्द करके कौमों-मज़हबों की शक्ल देने की कोशिश करते हैं तो इससे ज्यादा उन महात्माओं के साथ हम और क्या बेइंसाफ़ी कर सकते हैं ।

महात्मा समझाते हैं कि यह जो कुछ भी रचना है, दुनिया को जो हम चलती-फिरती देख रहे हैं, यह सब अपने आप ही पैदा नहीं हुई । इसकी रचना करने वाला कोई न कोई ज़रूर है । वह कौन है ? वह एक परमात्मा है, जिसके हमने अनेकों ही नाम अपने प्रेम और भक्ति

में आकर रखे हैं। यह जो कुछ भी नजर आ रहा है, इस सबकी रचना उस एक परमात्मा ने की है। हमारी आत्मा उस परमात्मा का अंश है। हम उस सतनाम रूपी समुद्र की बूंदें हैं, उस एक ही सूरज की किरणें हैं। कबीर साहिब फरमाते हैं, "कहु कबीर इहु राम की अंस"। तुलसी साहिब फरमाते हैं—

"चौथे लोक बसत इक स्वामी ।
जीव अंस उस अन्तरयामी ।।"

गोस्वामी तुलसीदासजी भी राम-चरित मानस में लिखते हैं—

"ईश्वर अंस जीव अबिनासी ।
चेतन अमल सहज सुख रासी ।।"

यह आत्मा उस एक राम या परमात्मा का अंश है। गुरु नानक साहिब भी यही उपदेश देते हैं—

"आतम महिं राम राम महिं आतम, चीन्हस गुरु वीचारा ।।"

आत्मा के अन्दर वह परमात्मा है और परमात्मा के अन्दर यह आत्मा है। मिसाल के तौर पर, एक वड़ का पेड़ कितना वड़ा होता है, लेकिन उसका बीज कितना छोटा-सा होता है। अगर कोई हमें समझाये कि इस छोटे से वड़ के बीज के अन्दर इतना वड़ा पेड़ है तो आसानी से हमारी समझ में आना वड़ा मुश्किल है। पर जव हम उस बीज को ज़मीन में बोते हैं तो वह छोटा-सा पौधा वन कर, पालन-पोषण पाकर, कितना वड़ा वड़ का पेड़ हो जाता है। फिर हमें पता लगता है कि उस छोटे से बीज में इतना वड़ा वड़ का पेड़ है और उस पेड़ के अन्दर वड़ का छोटा-सा बीज है। इसी तरह गुरु नानक साहिब फरमाते हैं कि जव सन्तों के उपदेश पर चल कर हम अपने अन्दर खोज करेंगे, तव हमें पता लग जायेगा कि परमात्मा के अन्दर आत्मा है और जिस परमात्मा की हमें खोज है वह हमारी आत्मा के अन्दर है।

कर्म-सिद्धांत

हम उस मालिक से बिछुड़ कर इस माया के जाल में उलझे हुए बैठे हैं। यहाँ आकर हमारी आत्मा ने मन का साथ ले लिया है। हमारा मन इन्द्रियों के भोगों, विषयों-विकारों, शराबों-कबाबों, दुनिया के धन्धों का आशिक है और मन जो कर्म करता है उसका नतीजा साथ-साथ आत्मा को भी भुगतना पड़ता है, क्योंकि आत्मा और मन की गाँठ बँधी हुई है। इस दुनिया को ऋषियों-मुनियों ने कर्म-भूमि कहा है। मुहम्मद साहिब ने इसे आख़िरत (परलोक) की खेती फरमाया है। उनके वचन हैं—"अल दुनिया मज़रत उल आखरत।" गोस्वामी तुलसीदासजी रामचरित मानस में कहते हैं—

> "करम प्रधान विश्व रच राखा।
> जो जस कीन तास फल चाखा॥"

गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

> "दोस न देऊ किसै, दोस करमाँ आपणिआँ॥
> जो मैं कीआ सो मैं पाया, दोस न दीजै अवर जणा॥"

गुरु अर्जुनदेवजी इसका 'करमाँ संदड़ा खेत' कह कर वर्णन करते हैं। इस दुनिया में आकर हम जो जो कर्म करते हैं, अच्छे हों या बुरे, सबका ही नतीजा हमेशा हमें भुगतना पड़ता है। इसी प्रकार हज़रत ईसा ने फरमाया है, "मनुष्य जो कुछ बोता है, वही काटेगा" (गलीतियों ६:७)।

खेत में अगर हम मिर्च बोते हैं तो मिर्च की ही फसल इकट्ठी करने के लिए जायेंगे। अगर कोई आम का पौधा लगाता है, वह आम के ही फल खाने का हक़दार होता है। कर्म चाहे नेक हों या बुरे, उनका नतीजा या फल भुगतने के लिए शरीर के बन्धनों में आना पड़ता है। अगर नेक कर्म करते हैं तो सेठ-साहूकार बन कर आजायेंगे, 'सी क्लास' के क़ैदी होने के बजाय 'ए क्लास' प्राप्त कर लेंगे, झोंपड़ी से बिस्तर उठा कर महल में जा बिछायेंगे, लोहे की

ज़ंजीरें उतर जायेंगी और सोने के बन्धन चढ़ जायेंगे। ज्यादा से ज्यादा हम स्वर्ग या बैकुण्ठ तक चले जाते हैं। वे भी भोग योनियाँ हैं, उसके बाद फिर हमें चौरासी के जेलखाने में आना पड़ता है। और अगर बुरे कर्म करते हैं, फिर तो नरक और चौरासी हमेशा तैयार ही रहते हैं। स्वामीजी समझाते हैं—

"करम जो जो करेगा तू। वही फिर भोगना भरना ॥"

सहजोबाई कहती हैं—

"पशु पंछी, नर, सुर, असुर, जलचर, कीट पतंग।
सब ही उतपति करम की, सहजो नाना रंग ॥"

क्या राजा, क्या प्रजा, क्या अमीर, क्या गरीब, क्या औरत, क्या आदमी, हम सब दुनिया के जीव कर्मों के इस जाल में फँसे बैठे हैं। और इन कर्मों के कारण जिस योनि में भी जाकर जन्म लेना पड़ता है उसमें बैठकर दुःख ही दुःख, मुसीवतें ही मुसीबतें सहनी पड़ती हैं। उस मालिक से विछुड़ कर किसी भी योनि में हम कभी सुख और शांति प्राप्त नहीं कर सकते। हर रोज़ इन्सान की खुराक के लिये हज़ारों तरह के जानवर ज़िवह किये जाते हैं। किस तरह उनके गलों पर छुरियाँ चल रही हैं। क्या हम ऐसे मुर्गी, भेड़ या बकरी के जामे में जाकर सुख प्राप्त कर सकते हैं? हम कभी यह विचार ही नहीं करते कि अगर हमें अपने कर्मों के कारण उन जामों में जाना पड़ जाये और हमारी गर्दन पर छुरियाँ और कुल्हाड़ियाँ हों तो हम क्या महसूस करेंगे। कई वार, जिस समय डाक्टर टीका लगाने के लिए एक पतली-सी सुई गरम करता है तो कई लोगों का शरीर डर से काँपना शुरू कर देता है; हालाँकि वह टीका हमारे फायदे के लिए ही होता है। ऊँट के जामे की हालत देखें, किस तरह उस पर बोझ लदा हुआ है और किस तरह आगे से खींचा जा रहा है। ताँगे के घोड़े की हालत हम आम देखते हैं कि कितनी सवारियाँ उस पर सवार हैं और किस तरह उस पर चाबुक धड़ाधड़ पड़ रहे हैं। बैल के जामे के बारे में सोचें। उसे सारा दिन किसान हल में जोतते हैं।

अगर वह थककर गिर भी जाता है तो भी वे लोहे की आर मार-मारकर उसी तरह हल में चलाये जाते हैं। मतलब यही है कि किसी भी जामे को लेकर परख करें, हरएक में दुःख-ही-दुःख, मुसीबतें ही मुसीबतें दिखाई देती हैं।

निचले जामों की हालत तो अलग रही, मनुष्य के जामे के बारे में अच्छी तरह विचार करके देख लें, कितने दुःख और कितनी मुसीबतें हर रोज उठानी पड़ती हैं। हालाँकि इस जामे को 'टाप आफ दि क्रिएशन' (सृष्टि का सिरमौर) कहते हैं, ऋषि-मुनि इसे नर-नारायणी देह कहकर समझाते हैं, मुसलमान फ़कीर इसे अशरफ़-उल-मख्लूकात कहकर याद करते हैं और देवी-देवता भी इस जामे को लोचते हैं, लेकिन फिर भी इस जामे में बैठकर कोई भी सुख और शांति प्राप्त नहीं कर सकता। कोई बीमारी के हाथों अति दुःखी हो जाता है, कोई बेरोज़गारी से तंग आ जाता है। किसी को सन्तान पैदा नहीं होती, वह दिन-रात तड़पता है, तो कितनों को बाल-बच्चों ने दुःखी कर रखा है। किसी को कर्जा चुकाना है, वह चिन्ता और फ़िक्र में सारी रात सो नहीं सकता; किसी को कर्ज़ा वसूल करना है, वह सारा दिन कचहरी में परेशान हो रहा है। हम सरदी और गरमी में हर रोज सड़कों पर कंगालों की हालत देखते हैं कि किस तरह पेट की खातिर वे चिल्ला रहे हैं। इसी तरह अस्पतालों में जाकर बीमारों की चीखें सुनते हैं कि किस प्रकार वे बेचारे दुःखी हो रहे हैं। अगर जेलखानों में अपराधियों के वृत्तान्त सुनने का मौका मिले तो बड़ी दर्दनाक कहानियाँ सुननी पड़ती हैं। तात्पर्य यही है कि संसार में नजर डाल कर देखें तो चारों ओर दुःख ही दुःख, मुसीबतें ही मुसीबतें नजर आती हैं। कभी भी रेडियो चला कर या अखबार पढ़कर देख लें, दुनिया में किसी न किसी कौम, मजहब या मुल्क के लड़ाई-झगड़े चलते ही रहते हैं, कितने गरीबों का खून हो रहा है, किस तरह औरतें विधवा हो रही हैं और बच्चे अनाथ बन रहे हैं। जिस दुनिया में यह हालत है कि रोटी-कपड़े की खातिर दिन-रात झगड़ते और तड़पते फिरते हैं और मौत का डर हमेशा बना रहता है

कि पता नहीं किस समय और किसके हाथों आ जाये, उस नगरी के अन्दर हम सुख और शान्ति कैसे प्राप्त कर सकते हैं ? यही हालत देखकर गुरु नानक साहिब पुकार उठे कि हे नानक ! सारा संसार ही दुखी है । रामचरित-मानस में तुलसीदासजी कहते हैं—

"सकल जीव जग दीन दुखारी ।।"

अगर मनुष्य के जामे में आकर भी हम इस संसार में सुख और शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते तो फिर और किस जामे में प्राप्त कर सकेंगे । महात्मा उपदेश देते हैं कि इस दुनिया में कभी भी किसी को हमेशा के लिए सुख व शान्ति नहीं मिल सकती; क्योंकि यह दुनिया सुख और दुःख का घर है, पुण्य और पाप की नगरी है । हम अपने पुण्य और पाप के कारण यहाँ आकर सुख और दुःख भुगत रहे हैं । अच्छी तरह दुनिया में खोज करके देख लो, कोई शख्स ऐसा नहीं मिलेगा जिसे इस शरीर में बैठकर सुख ही सुख मिलते हों, कभी भी दुःखों का सामना न करना पड़ा हो । या किसी को दुःख ही दुःख प्राप्त होते हों और कभी भी सुख की साँस न आई हो । अनुभव में आता है कि अगर दस दिन सुखों के मिल जाते हैं तो फिर दुःखों का सामना करना पड़ता है और अगर दस दिन दुःख के भुगत लेते हैं तो फिर थोड़ी बहुत सुख की साँस आ जाती है । जितने भी दुःख हमें भुगतने पड़ते हैं, ये हमारे पिछले जन्मों में किये हुए पाप हैं, जिनका नतीजा या फल अब भोग रहे हैं । और जो भी सुख की साँस आ रही हैं, वे हमारे पिछले जन्मों के पुण्य के कारण हैं । पुण्य और पाप के जोड़ या योग के कारण ही हमें मनुष्य का जामा मिलता है, जिसमें बैठकर हम उन पुण्यों और पापों का हिसाब दे रहे हैं । अगर हमारे सिर्फ पुण्य होते तो हम स्वर्गों में पहुँच जाते और अगर सिर्फ पाप होते तो हम नरकों में सज़ा भुगतते होते । किसी के ज्यादा पुण्य और थोड़े पाप हैं, तो वह ज्यादा सुखी और कम दुःखी नज़र आता है । किसी का पापों का बोझ ज्यादा हो जाता है और पुण्य का कम, तो वह ज्यादा दुःखी है और कम सुखी है । यही कारण है कि इस दुनिया में अमीरी व गरीबी, बीमारी और तन्दुरुस्ती और

ऊँच-नीच दिखाई देती है, क्योंकि हरएक जीव के अपने-अपने कर्म हैं जिनका फल वह यहाँ आकर भोग रहा है।

यह दुनिया आज तक न कभी स्वर्ग की नगरी बनी है और न कभी बन सकती है। जब हम इतिहास पढ़ते हैं तो पता लगता है कि दुनिया में लड़ाई-झगड़े, सुख-दुःख, अमीरी-गरीबी हमेशा से चली आ रही है। इस दुनिया में उच्च कोटि के महात्मा आये हैं और बड़े-बड़े समाज-सुधारक पैदा हुए हैं, फिर भी इसकी हालत पहले से कोई बेहतर नहीं हुई है और न ही कभी हो सकती है। सन्तों-महात्माओं का ध्येय या मिशन इस दुनिया को स्वर्ग या सुख की नगरी बनाने का नहीं है। बल्कि वे तो हमें ऐसा साधन और मार्ग बतलाते हैं जिस पर चलकर हम हमेशा के लिए इस देह के बन्धनों से मुक्त हो जायें और फिर इस दुनिया में ही न आयें। दुनिया के काँटे इकट्ठे करने में आज तक किसी ने सफलता प्राप्त नहीं की और न ही कोई कर सकता है। लेकिन अगर हम अपने पैरों में मज़बूत जूते पहन लें तो वे काँटे अपना असर नहीं कर सकते। दुनिया की समस्याएँ न आज तक किसी ने हल की हैं, न कोई उन्हें हमेशा के लिए हल कर सकता है। लेकिन महात्माओं के उपदेश पर चलकर हम अपना ख़याल इतना ऊँचा ले जा सकते हैं कि दुनिया के दुःख-सुख की समस्याएँ हम पर असर ही नहीं कर सकतीं। ईसा मसीह ने बाइबिल में ज़िक्र किया है—

"मैं तो आया हूँ कि बेटे को उसके पिता से, और बेटी को उसकी माँ से और बहू को उसकी सास से अलग कर दूँ।" (मैथ्यू १०:३४,३५)

अर्थात् मैं इस दुनिया को सुख और शान्ति की नगरी बनाने नहीं आया बल्कि जीवों को यहाँ से आज़ाद करने आया हूँ, माँ-बाप, बेटे-बेटियों वगैरह के आपस के मोह के बन्धनों को काटने आया हूँ, एक-दूसरे के लगाव, मोह और प्यार की ज़ंजीरों को तोड़ कर उनको मुक्त करने आया हूँ।

निस्सन्देह संसार में परोपकारियों और समाज-सुधारकों की

कोई कमी नहीं है। यहाँ अनेकों दयालु और नेक पुरुष हुए हैं। परन्तु सन्तों-महात्माओं का जो परोपकार है उसको और कोई परोपकार नहीं पहुँच सकता। यह इस छोटे से उदाहरण के द्वारा समझा जा सकता है। एक जेलखाने में बहुत से क़ैदी हैं। एक परोपकारी देखता है कि गरमी का मौसम है और उन क़ैदियों को ठण्डा पानी पीने को नहीं मिलता। वह उन पर तरस खाकर बरफ डालकर शरबत वगैरह पिलाना शुरू कर देता है। दूसरा परोपकारी सोचता है कि क़ैदियों को अच्छा खाना नहीं मिलता। वह दया करके अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट भोजन, मिठाइयाँ आदि बनवा कर उनको खिलाना शुरू कर देता है जिससे क़ैदी और खुश हो जाते हैं। तीसरा परोपकारी देखता है कि तेज सरदी का मौसम है, उन क़ैदियों के पास सरदी से बचने के लिए कोई खास कपड़े नहीं हैं। उसने काफी रुपये खर्च करके उनको सरदी से बचाने के लिए गरम कपड़े बनवा दिये। इस परोपकारी ने शायद पहले परोपकारियों से ज्यादा अच्छा परोपकार किया। सभी परोपकारी क़ैदियों पर तरस खाकर परोपकार कर रहे हैं, जिससे क़ैदियों की हालत पहले से ज्यादा अच्छी हो रही है। वे 'सी' श्रेणी से 'ए' श्रेणी के क़ैदी तो बन गये और उनको जेलखाने में ज्यादा सुख और आराम भी प्राप्त हो गया। लेकिन, इन सब परोपकारियों के होते हुए भी क़ैदी तो जेलखाने के जेलखाने में ही रहे। चौथे परोपकारी ने, जिसके पास जेलखाने की चाबी थी, क़ैदियों पर तरस खाकर जेलखाने का दरवाजा ही खोल दिया और उन्हें हमेशा के लिये मुक्त कर दिया। अगर इनमें सबसे ऊँचा परोपकार है तो उस जेलखाने की चाबी वाले का है।

सन्त-महात्मा इस चौरासी के जेलखाने की चाबी लेकर संसार में आते हैं और हमारे अन्दर मालिक से मिलने का शौक व प्यार पैदा करके, हमें रास्ता व युक्ति बतला कर, धुर-धाम पहुँचा कर हमेशा के लिये इस जेलखाने से आजाद कर देते हैं। इसलिये सन्तों और महात्माओं का परोपकार किसी भी समाज-सुधारक या राजनैतिक नेता के परोपकार से ऊँचा और सच्चा है।

महात्मा हमें उपदेश देते हैं कि जब तक हमारी आत्मा वापस जाकर उस परमात्मा से मिलाप नहीं करेगी, तब तक हम शरीर के बन्धनों और संसार के दु:खों से छुटकारा नहीं पा सकेंगे। कबीर साहिब फरमाते हैं---

"चल हंसा सतलोक को चलिये, छोड़ो यह संसारा हो।"

स्वामीजी का फरमान है---

"धाम अपने चलो भाई। पराये देश क्यों रहना ॥"

आत्मा और परमात्मा

हमारी आत्मा स्त्री है और परमात्मा इसका पति है। यह आत्मा रूपी स्त्री परमात्मा रूपी पति के चरणों में जाकर ही खुशी प्राप्त कर सकती है और सुहागिन हो सकती है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं---

"पिर सच्चे ते सदा सुहागन ॥"

फिर फरमाते हैं---

"जिन्हीं घर जाता आपना, से सुखिए भाई ॥"

जो वापस अपने असली घर पहुँच जाते हैं, वे सदा के लिये सुख और शान्ति प्राप्त कर लेते हैं। मौलाना रूम भी फरमाते हैं---

"ईं जहान ज़न्दाँ व माज़न्दानियाँ,
हज़रा कुन ज़न्दाँ व खुद रा दार हाँ"

अर्थात् यह जहान क़ैदखाना है, जिसमें हम क़ैद हैं। क़ैदखाने की छत में सूराख करके यहाँ से निकल भागो।

बहुत से महात्माओं ने आत्मा और परमात्मा के रिश्ते को स्त्री और पति का रिश्ता कहकर समझाया है, क्योंकि स्त्री हमेशा पति के चरणों में जाकर सुख व शान्ति प्राप्त कर सकती है। अगर एक स्त्री अपने पति के चरणों से दूर हो जाती है तो उसे ज़ो चाहें दुनिया की इज्ज़त हम दे दें, कितना ही रुपया पैसा दे दें, उसके मन को कभी

सुख-शान्ति नहीं आ सकती। वह अपने प्रीतम या पति के प्यार में ही सुख और शान्ति प्राप्त कर सकती है, जैसा कि कहा गया है—

"हरि नाह न मिलिऐ साजनै कत पाइऐ विसराम ।
सरब सिंगार तंबूल रस सन देही सब खाम ।"

रामकृष्ण परमहंस परमात्मा और आत्मा के रिश्ते को माँ और बेटे के रिश्ते से याद करते हैं। जब तक बच्चा अपने आपको माँ की निगरानी पर छोड़ देता है, उसे कोई भी चिन्ता नहीं रहती और हर प्रकार से खुश रहता है। ईसा मसीह ने इस रिश्ते को बाप और बेटे के रिश्ते से याद किया है, क्योंकि जब तक लड़के के सिर पर बाप की छत्र-छाया है, उसे कोई ग़म या फिक्र नहीं हो सकती। मतलब यही है कि आत्मा, परमात्मा को पाकर ही सुख और शान्ति प्राप्त कर सकती है।

संसार की अवस्था

सहजोबाई जो कि एक बहुत प्रसिद्ध महात्मा हुई हैं, कहती हैं—

"धनवंते दुखिये सभी, निरधन दुख का रूप ।
साध सुखी सहजो कहे, पाया भेद अनूप ।।"

इसी प्रकार कबीर साहिब फरमाते हैं कि राजा और प्रजा सब दुःखी ही दुःखी नज़र आते हैं—

"तन धर सुखिया कोई न दीखा, जो दीखा सो दुखिया हो ।
जोगी दुखिया जंगम दुखिया, तपसी को दुःख दूना हो ।
आसा त्रिसना सबको बियापै, कोई महल न सूना हो ।
घाटे बाढ़े सब जग दुखिया, क्या गिरही बैरागी हो ।
सुखदेव अचारज दुख के डर से, गरभ से माया त्यागी हो ।
साँच कहौं तो कोई न मानै, झूठ कहा नहिं जाई हो ।
ब्रहमा बिसनु महेसुर दुखिया, जिन यह राह चलाई हो ।
अवधू दुखिया भूपत दुखिया, रंक दुखी बिपरीती हो ।
कहे कबीर सकल जग दुखिया, संत सुखी मन जीती हो ।"

तुलसी साहिब भी अपनी वाणी में संसार के दु:खों के बारे में इस प्रकार कहते हैं--

"कोई तो तन मन दुखी, कोई नित उदास ।
एक एक दुख सबन को, सुखी संत का दास ।।"

गुरु नानक साहिब फरमाते हैं---

"नानक दुखिया सब संसार ।।
सो सुखिया जिस नाम आधार ।।"

अर्थात्, सब दुनिया के जीव अपनी अपनी जगह दु:ख व मुसीबत से भरे हुए बैठे हैं, असली सुख और शान्ति उसी को है जिसने मालिक की भक्ति और प्यार का आसरा लिया हुआ है। हम दुनिया के जीव उस परमात्मा को तो भूले बैठे हैं, उसकी खोज नहीं करते, उसकी भक्ति की ओर हमारा ख़याल ही नहीं है और दुनिया की शक्लों और पदार्थों में सुख व शान्ति ढूंढने की कोशिश करते हैं। जितने हम उस परमात्मा को भूल कर सुख और शान्ति ढूंढ रहे हैं, उतने ही दिन-रात ज्यादा दु:खी होते चले जा रहे हैं, क्योंकि जिन शक्लों और पदार्थों में सुख ढूंढ रहे हैं, वे सब चीजें अस्थायी और नाशवान हैं। फिर उनका सुख किस प्रकार स्थायी हो सकता है ! जब तक हमें वह वस्तु न मिले जो कभी भी नष्ट और फ़नाह न हो, उसे हम अपना न बना लें, हम कैसे सुख व शान्ति पा सकते हैं, क्योंकि जिस चीज़ के आने में खुशी होती है उसके जाने में वैसा ही दु:ख होता है। शादी के समय हमारे मन में कितनी ख़ुशी होती है, लेकिन अगर उसी साथी से झगड़ा या मतभेद हो जाता है तो हम कितने दु:खी हो जाते हैं। जिस सन्तान के जन्म पर हम दावतें करते हैं, खुशियाँ मनाते हैं, अगर वही सन्तान अयोग्य निकल जाये, कहने में न चले, बीमार हो जाये या परमात्मा उसे वापस बुला ले तो जरा सोचें कि वह हमारे लिये कितने दु:ख का कारण बन जाती है। हम दुनिया की धन-दौलत में सुख ढूंढने की कोशिश करते हैं। इसे कमाने के लिए कितने दु:ख, कितनी मुसीबतें

सहनी पड़ती हैं, अपने कीमती उसूलों को भी कुरबान करते हैं, स्वास्थ्य का भी सत्यानाश कर लेते हैं और कई प्रकार की मानसिक बीमारियाँ सिर पर मोल ले लेते हैं। उसे कमाने में हर तरह की परेशानी उठाते हैं। लेकिन इतने पर भी, उस दौलत को रखने में कौन-सी शान्ति प्राप्त होती है। अगर बैंकों में रखते हैं तो उनके फ़ेल हो जाने का खतरा हैं, कभी आय-कर और बिक्री-कर का डर और चिन्ता लगी रहती है। कभी यारों-दोस्तों के मुकर जाने की फिक्र है कि शायद वे रुपया लेकर वापस न करें। और जिस वक्त वही दौलत जाती है, अच्छी तरह दुःखों और मुसीबतों में फँसा कर ही जाती है। कभी डाक्टर की फीसों में होकर निकल जाती है, कभी मुक़दमों में उलझा कर चली जाती है। कितने दुःखों और मुसीबतों से कमाई, लेकिन फिर भी सुख न दिया। उसके जाने पर जो शरीर पर मुसीबतें भुगतनी पड़ती हैं, वे अलग ही हैं। गुरु नानक साहिब का कथन है—

"पापाँ बाझों होवे नाहीं। मोयाँ साथ ना जाई।।" *

फिर यह सोचकर कि शायद दुनिया के एशो-इशरत या भोग-विलासों में सुख हो, शराबों-कबाबों के स्वादों में उलझ जाते हैं। लेकिन ये भी हमारे मन को तबाह कर देते हैं, गिरा देते हैं और हमें बीमारियों में फँसा देते हैं। कभी हम हुकूमत के नशे में सुख ढूँढते हैं या हमें राज-नैतिक नेता बनने का शौक हो जाता है। जिस समय लोग में आदर और मान-बड़ाई देते हैं, हमारे जुलूस निकालते हैं, अखबारों में तारीफ करते हैं, हमारा मन फूला नहीं समाता। लेकिन हम नेताओं के हाल भी रोज़ पढ़ते हैं। रातों रात तख्ते पलट जाते हैं, दूसरी पार्टी का ज़ोर पड़ जाता है, तो वे कभी गोली का शिकार बना देते हैं, कभी फाँसी के तख्तों पर चढ़ा देते हैं, कभी जेलखाने में डाल देते हैं, कभी अखबारों में मिट्टी पलीत करनी शुरू कर देते हैं। जिस हुकूमत के

* पाप किये बगैर इकट्ठी नहीं होती और मरने पर साथ नहीं जाती।

नशे और दुनिया की मान-वड़ाई में सुख ढूंढने की कोशिश की, वही हमारे लिए दुःख का कारण बन बैठती है। गुरु नानक साहिब का कथन है—

"सुख माँगत दुख आगल होई ।।"

सारांश यह कि इस दुनिया में हम कभी भी सुख व शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। ये जो भी थोड़े-बहुत सुख नज़र आ रहे हैं, समय पाकर दुःखों में बदल जाते हैं। महात्मा हमें अपने अनुभव से समझाते हैं कि जब तक हमारी आत्मा परमात्मा से मिलाप नहीं करती, हम सुख व शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते। संसार की धन-दौलत और शक्लों में से भी हम तब तक ही सुख-शान्ति प्राप्त कर सकते हैं, जब तक हमारा खयाल मालिक की भक्ति की ओर है। उदाहरण के तौर पर, एक बच्चा अपने पिता की अँगुली पकड़कर प्रदर्शनी में तमाशा देखने जाता है। उसे प्रदर्शनी में हर वस्तु बड़ी ही सुन्दर और अच्छी मालूम देती है। कहीं बिजलियाँ जल रही हैं, कहीं तरह तरह के खेल हो रहे हैं, कहीं खिलौनों और मिठाइयों की दुकानें सजी हुई हैं। बच्चा समझता है यह खुशी प्रदर्शनी के साज-सामान से मिल रही है। लेकिन अगर गलती से बच्चे से अपने पिता की अँगुली छूट जाती है तो वह चीखें मारना शुरू कर देता है और रोने-चिल्लाने लगता है, हालाँकि प्रदर्शनी के वे ही सब साज-सामान वहीं के वहीं हैं। फिर बच्चा महसूस करता है कि वह प्रदर्शनी में खुशी उतनी देर तक ही पा सकता था जितनी देर तक उसने अपने पिता की अँगली पकड़ी हुई थी। इसी तरह दुनिया में भी हम सुख और शान्ति उसी समय तक पा सकते हैं, जब तक हमारा खयाल और लिव उस मालिक की ओर रहती है। इसलिये महात्मा हम सबके अन्दर मालिक से मिलने का प्रेम-प्यार पैदा करते हैं। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"हरि की पूजा दुलंभ है सन्तहु, कहना कछू न जाई ।।"

हम सब दुनिया के जीव किसी न किसी के मोह-प्यार में फँसे हुए हैं, किसी न किसी की भक्ति और पूजा जरूर कर रहे हैं। कोई

बेटे-बेटियों से प्यार करता है, कोई कौमों, मज़हबों और मुल्कों की भक्ति कर रहा है, कोई धन-दौलत की पूजा करता है। ये शक्लें और ये पदार्थ हमारी भक्ति और प्रीति के योग्य नहीं, क्योंकि इनकी प्रीति और भक्ति हमें बार-बार देह के बन्धनों में खींच कर ले आती है। मालिक की भक्ति और प्यार ही हमें वापस ले जाकर उस परमात्मा से मिलाता है। इसलिए, महात्मा समझाते हैं कि उस मालिक की भक्ति की महिमा कभी बयान ही नहीं की जा सकती। उसकी भक्ति और प्यार के द्वारा वापस जाकर हम मालिक ही बन जाते हैं। भीखाजी फरमाते हैं—

"भीखा भूखा को नहीं, सबकी गठड़ी लाल।
गिरह खोल नहीं जानते, तिस विध भए कंगाल॥"

परमात्मा एक है

सब महात्माओं का यही अनुभव है कि जिस परमात्मा से हम मिलना चाहते है, वह एक है। यह नहीं कि हिन्दुओं का कोई और या सिक्खों व ईसाइयों का कोई और है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"एक पिता एकस के हम बालक॥"

और

"सभना जीआँ का एको दाता॥"

शेख सादी कहते हैं—

"बनी आदम अज़ाये यक दीगर अंद,
चो दर आफ़रीनश ज़ि यक जौहर अंद।"

अर्थात् सब मनुष्य एक ही स्रोत से निकले हैं और एक-दूसरे के भाई हैं। जितने भी दुनिया के जीव हम देख रहे हैं उन सबको पैदा करने वाला एक ही परमात्मा है। मुसलमान फ़कीर उस परमात्मा को रब्बुल आलमीन कहकर याद करते हैं, कि सारे संसार का एक ही परमात्मा है। और हमेशा से वही परमात्मा चला आ रहा है। यह

नहीं कि पहले कोई और परमात्मा था या अब कोई और है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"जग जीवन साचा एको दाता ।।"

सारे जग को जीवन देने वाला एक ही दाता है और वह हमेशा से सच्चा है, अर्थात् वह जन्म-मरण से रहित है। जपजी साहब के शुरू में ही गुरु नानक साहिब बड़ी अच्छी तरह से वर्णन करते हैं—

"एक ओ सतनाम करता पुरख ।।"

"आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, नानक होसी भी सच ।।"

कि अनुभव के द्वारा मुझे अपने अन्तर में एक ऐसी सत्ता या शक्ति मिली है जो सृष्टि के आदि से, युगों के आदि से सच ही चली आ रही है अर्थात् जो कभी नष्ट या फ़नाह नहीं होती। वह एक परमात्मा है। उस मालिक के अलावा जो कुछ भी हम आँखों से देख रहे हैं, सबको नष्ट या फ़नाह हो जाना है। कोई भी चीज़ यहाँ स्थिर नहीं है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"हरि बिन सभ कुछ मैला सन्तहु ।।"

"थिर नाराइन थिर गुरु थिर साचा वीचार ।।"

इसी तरह और जगह लिखते हैं—

"कूड़ राजा कूड़ परजा कूड़ सब संसार ।
कूड़ मंडप कूड़ माड़ी कूड़ बैठनहार ।।
कूड़ सोना कूड़ रूपा कूड़ पहननहार ।
कूड़ काया कूड़ कपड़ कूड़ रूप अपार ।।
कूड़ मियां कूड़ बीवी खप होए खुआर ।
कूड़ कूड़े नेहूं लागा विसरिया करतार ।।
किस नाल कीजे दोसती सब जग चलणहार ।।"

कि हमारा यह शरीर भी कूड़ और नाशवान है। और इसके अन्दर बैठ कर जिस दुनिया को हम अपना बनाने की कोशिश करते हैं,

जिसके साथ प्यार किये बैठे हैं, यह भी कूड़ है । दुनिया में कोई भी चीज हमारी दोस्ती के योग्य नहीं, सिवाय उस परमात्मा के, क्योंकि उसके सिवाय हरएक चीज़ नाशवान है । सिर्फ एक मालिक ही है जो हमेशा रहता है ।

जाति और धर्म

उस मालिक की कोई कौम नहीं है, उसका कोई मज़हव या मुल्क नहीं है । न ही उस मालिक की कोई जाति या रंग-रूप है । अगर हम महात्माओं की वाणियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करें तो पता लगेगा कि वे हमारे विचारों को जात-पाँत, कौम, मज़हव व मुल्क के भेद-भावों से ऊँचा उठाकर हमारे अन्दर परमात्मा की भक्ति का शौक और प्रेम-प्यार पैदा करते हैं । गुरु अर्जुनदेवजी समझाते हैं—

"वरन जाति चिहन नहीं कोई, सव हुकमे सृसटि उपाइदा ।"

जिस परमात्मा ने अपने हुक्म के द्वारा इस सृष्टि की रचना की है, अगर उसका कोई रंग-रूप और जाति नहीं है तो हमारी आत्मा की–जो उस परमात्मा का अंश है, उस परमात्मा से ही निकली है और वापस जाकर उसमें ही समाना चाहती है—कैसे कोई जाति हो सकती है ? जव समुद्र की कोई जाति नहीं है तो उसकी एक बूंद की क्या जाति हो सकती है ? अगर सूरज की कोई कौम या मजहव नहीं है तो एक मामूली किरण की कौनसी कौम, कौनसा मजहव हो सकता है ? ये सव जात-पाँत के झगड़े मनुष्य के अपने पैदा किये हुए हैं । परमात्मा ने तो सिर्फ मनुष्य पैदा किये हैं । हम अपने आपको जात-पाँत, कौम, मज़हव व मूल्कों के छोटे-छोटे दायरों में बाँट रहे हैं और एक दूसरे के भेद-भाव में फँसे हुए हैं । गुरु नानक साहिव समझाते हैं—

"जित्थे लेखा मंगिए तित्थे देह जात न जाई ।।"

जिस जगह हमारे कर्मों का हिसाव-किताव होगा, उस जगह न तो कोई हमारी जात-पाँत के वारे में पूछेगा और न हमारा शरीर ही

वहाँ पहुँच सकेगा। किसी का शरीर अग्नि के सुपुर्द हो जाता है, किसी का मिट्टी के अंदर ही दबा रह जाता है। जात-पाँत या कौमों-मज़हबों का सम्बन्ध इस शरीर के साथ ही रह जाता है। अन्त में किसी की जात-पाँत जल जाती है, किसी की मिट्टी में ही दबी रह जाती है। कबीर साहिब अपनी वाणी में उपदेश देते हैं--

"जात-पाँत पूछे ना कोय।
हरि को भजे सो हरि का होय ॥"

किसी को भी आपकी जात-पाँत नहीं पूछना है; जो परमात्मा की भक्ति करता है वह परमात्मा का रूप हो जाता है। जहाँ हमारे कर्मों का हिसाब-किताब होगा वहाँ कोई यह सवाल नहीं पूछने वाला है कि तुम हिन्दू थे या ईसाई, हिन्दुस्तान से आए हो, अमेरिका से आये हो या अफ्रीका से। उस जगह तो हमारे भक्ति-भाव, इश्क और प्रेम की ही कदर होती है। इसी तरह साईं बुल्लेशाह, जो जाति के सैयद थे और जो मुसलमानों में एक बेधड़क महात्मा हुए हैं, अपने कलाम में स्पष्ट करते हैं—

"अमलाँ उत्ते होन निबेड़े, खड़िआँ रहणगिआँ जाताँ ॥"

जो अपने अमलों और कर्मों पर ध्यान देते हैं, वे ही परमात्मा को मंज़ूर हैं। जो जात-पाँत के अभिमान में फँसे हैं, उनकी उस दरगाह में कोई कदर नहीं है। तुलसी साहिब भी अपनी वाणी में यही समझाते हैं---

"नीच नीच सब तर गये, संत चरन लवलीन।
जाती के अभिमान से, डूबे बहुत कुलीन ॥"

जो अपने आपको नीचा समझता है, जिसके अन्दर नम्रता और दीनता है, जो सन्तों के चरणों से प्यार रखता है, उनके उपदेश पर चलता है, वह इस भव-सागर से पार हो जाता है। जिनको जात-पाँत का अभिमान है वे इस भव-सागर में गोते खाते हैं। कौमों की कौमें, मज़हबों के मज़हब इस जात-पाँत के अभिमान में डूबे जा रहे हैं। फिर फरमाते हैं—

"वड़े बड़ाई पाय कर रोम रोम अहंकार ।
सतगुरु के परचे बिना चारों वरन चमार ।"

अर्थात्, वड़े लोग बड़ाई पाकर रोम-रोम में अहंकार से भर जाते हैं । सतगुरु से मिले बिना, उनके प्यार के बिना चारों वर्ण ही नीच हैं । पलटू साहिब भी हमें यही समझाते हैं—

"पलटू ऊंची जात का मत कोई करे हंकार ।
साहिब के दरबार में केवल भगति पियार ।।"

मालिक की दरगाह में केवल भक्ति और प्यार की ही कदर है । भक्ति और प्यार ही हमें वापस ले जाकर उस मालिक से मिलायेंगे । किसी के मन में यह विचार न हो कि मैं ब्राह्मण के घर पैदा हो गया हूँ मुझे ही मालिक से मिलने का गौरव प्राप्त हो सकता है, या मैं हिन्दू से ईसाई बन गया हूँ, अब सिर्फ मैं ही परमात्मा से मिल सकूँगा । या कोई यह सोचे कि मैं एक नीच जाति में जन्म ले चुका हूँ, मैं शायद अब कभी भी परमात्मा की भक्ति नहीं कर सकूँगा । गुरु नानक साहिव ने तो इस जात-पाँत का यहाँ तक खण्डन किया है—

"विन नामे सव नीच जात हैं, विसटा के कीड़े होंय ।।"

जो मालिक के नाम की कमाई नहीं करता, उससे ज्यादा नीच जाति वाला और कौन हो सकता है, क्योंकि वह मौत के बाद नीच और अधम योनियों में जायेगा । आगे फरमाते हैं—

"जिस नाम रिदै सोई बड़ राजा ।। जिस नाम रिदै तिस पूरे काजा ।।
जिस नाम रिदै सो सब ते ऊँचा ।। नाम बिना भ्रमि जोनी मूचा ।।
जिस नाम रिदै सो जीवन मुकता।। जिस नाम रिदै तिस सब ही जुगता।।

फिर कहा है—

"सबद वसे सोई जन ऊँचा सच्चे आप समावणिआँ ।।"

और

"नानक होर पातसाहियाँ कूड़याँ, नाम रते पातसाह ।।"

जो मनुष्य शरीर प्राप्त करके उस मालिक के शब्द या नाम को

अपने मन में वसा लेता है, उठते-बैठते एक शब्द की कमाई में लग जाता है, वही व्यक्ति सबसे ऊँचा है क्योंकि वह मौत के बाद जाकर सच्चे परमात्मा के अन्दर समा जाएगा। अतएव, जो मालिक की जाति, कौम, मज़हब और मुल्क है, वही हमारी आत्मा की जाति, कौम, मज़हब व मुल्क है, इसलिए हरएक महात्मा हमारे खयाल को पक्षपात या भेद-भाव के इन छोटे-छोटे दायरों से ऊपर ले जाने की कोशिश करता है और हमारे अन्दर उस परमात्मा के सच्चे नाम की कमाई और प्यार का शौक पैदा करता है।

परमात्मा हमारे अन्दर है

सभी महात्मा हमें अपने अनुभव से समझाते हैं कि जिस परमात्मा को हम ढूंढना चाहते हैं और जिस परमात्मा से मिलकर हमारी आत्मा हमेशा के लिए जन्म-मरण के दु:खों से बच सकती है, वह कहीं वाहर नहीं है। वह हरएक के शरीर के अन्दर बैठा हुआ है। जिसे मिला है, अपने अन्दर ही मिला है और जिसे भी मिलेगा अपने अन्दर ही मिलेगा। इसलिए अगर कोई प्रयोगशाला है जिसके अन्दर जाकर हमें परमात्मा से मिलने की खोज या रिसर्च करना है, तो वह केवल हमारा शरीर ही है। सब महात्माओं का यही उपदेश है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"सब कुछ घट महि बाहर नाहीं ।। बाहर ढूंढें सो भरम भुलाहीं ।।"

और

"इस काया अन्दर जग जीवन दाता वसे ।। सभना करे प्रतिपाला।।"

जिस परमात्मा ने सारे जग को जीवन दिया है, इस सृष्टि की रचना की है और जो सबका दाता है, सबकी सँभाल और रखवाली करता है, वह परमात्मा इस शरीर के अन्दर रहता है। आप फिर समझाते हैं—

"इस गुफा में अखुट भंडारा ।।
जिस विच बसे हरि अलख अपारा ।।"

हमारा यह शरीर केवल आत्मा के ही रहने की गुफा नहीं है। वह परमात्मा भी, जो कि अलख और अगम है, इस गुफा अर्थात शरीर के अन्दर ही है। फिर एक और स्थान पर लिखते हैं—

'काया अंदर आपे बसे अलख न लखिआ जाई ।।
मनमुख मुगध बूझे नाहीं बाहर भालण जाई ।।"

वह परमात्मा खुद हमारे शरीर के अन्दर बैठा हुआ है । हम उसे बाहरी आँखों के द्वारा बाहर ढूंढने की कोशिश करते हैं । वह हमें कैसे नज़र आ सकता है ? हम मनमुख हैं, बेसुध हैं, गँवार है, जो चीज़ हमारे घर के अन्दर है, हम उसे बाहर ढूंढ रहे हैं । कबीर साहिब का भी यही अनुभव है—

"ज्यों तिल में तैल है, ज्यों चकमक में आग ।
तेरा प्रीतम तुझमें, जाग सकै तो जाग ।।"

आप फिर फरमाते हैं—

"ज्यों नैनन में पुतली, त्यों खालिक घट माँहि ।
मूरख लोग जाने नहीं, बाहर ढूँढन जाँहि ।।
जा कारन जग ढूँडया सो तो घट ही माँहि ।
परदा दिया भरम का ताँते सूझे नाँहि ।।"

जिस तरह तिल में तेल है और पत्थर में आग है, उसी तरह परमात्मा भी हमारे शरीर के अन्दर है । जिस प्रकार आँखों के अन्दर पुतली है, उसी प्रकार इस दुनिया को बनाने वाला हमारी देह के अन्दर है । हम लोग मूर्ख हैं, अन्धे हैं, उसे अपने शरीर के अन्दर तो ढूंढते नहीं, बाहर तलाश करने की कोशिश करते हैं । जिसकी खोज के लिये हम जंगलों-पहाड़ों में भटकते फिरते हैं, जिसे हम मन्दिरों-मस्जिदों में ढूंढते फिरते हैं वह हमारे शरीर के ही अन्दर है । हमारे और मालिक के बीच में भ्रम का परदा है इसलिए वह हमें दिखायी नहीं देता । इसी प्रकार महात्मा चरनदासजी का अनुभव है—

"दूध मद्ध ज्यों घीव है, मेंहदी माहीं रंग ।
जतन बिना निकसे नहीं, चरनदास लो ढंग ।।
जो जाने या भेद को, और करे परवेस ।
सो अबिनासी होत है, छूटे सकल कलेस ।।"

इसी प्रकार तुलसी साहिब, जो कि उत्तर प्रदेश में दक्कनी बाबा के नाम से बड़े प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं, अपनी वाणी में कहते हैं—

"क्यों भटकता फिर रहा तू ऐ तलाशे यार में ।
रास्ता शाहरग में है दिलबर पै जाने के लिये ।।"

क्यों उस परमात्मा की तलाश में बाहर भटकते फिर रहे हो । परमात्मा हरएक के शरीर के अन्दर है और उस तक पहुँचने का रास्ता भी परमात्मा ने हर एक के अन्दर ही रखा है । ईसा मसीह ने भी बाइबिल में यही समझाया है, "खुदा की बादशाहत तेरे अन्दर है ।" पलटू साहिब का भी यही अनुभव है—

"साहब साहब क्या करे, साहब तेरे पास ।"

कि वह परमात्मा तो चौबीस घंटे हमारे साथ-साथ फिरता है, अर्थात् वह परमात्मा हरएक के शरीर के अन्दर है, तुम बाहर किसको दिन-रात ढूँढते फिर रहे हो । गुरु अमरदासजी फरमाते हैं—

"सदा हजूर दूर नह देखो रचना जिन रचाई ।।"

इसी तरह दादू साहिब फरमाते हैं—

"दादू जीव न जाने राम को, राम जीव के पास ।
गुरु के शबद वह बाहिरा, तातैं फिरे उदास ।।
दूरि कहे ते दूरि है, राम रह्या भरपूर ।
नैनहुँ बिन सूझै नहीं, ताते ओय कित दूर ।।
कोई दौड़े द्वारिका, कोई काशी जाहिं ।
कोई मथुरा को चलै, साहिब घट ही माहिं ।।
सब घट माहिं रमि रह्या, बिरला बूझै कोय ।
सोई बूझै राम को, जो राम सनेही होय ।।"

कि जिस परमात्मा ने दुनिया की रचना की है वह चौबीस घण्टे तुम्हारे साथ-साथ है। लेकिन हम दुनिया के जीव अपनी देह के अन्दर जाकर कभी परमात्मा की खोज करने की कोशिश नहीं करते। हमेशा उसे या तो जंगलों और पहाड़ों में ढूँढने की कोशिश करते हैं, या उसे ग्रंथों-पोथियों में से पाना चाहते हैं या समझते हैं कि वह गुरुद्वारों, मन्दिरों, मस्जिदों या गिरजों में ही मिल सकता है। कभी विचार आता है कि वह कहीं आसमानों के पीछे छिपा बैठा है। लेकिन जिस जगह वह परमात्मा है, उस जगह तलाश नहीं करते। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"गुरमुख होवे सो काया खोजे ।
होर सब भरम भुलाई ।।"

कि जो मालिक के असली भक्त और प्रेमी हैं, जिनको किसी सन्त-महात्मा की संगति मिल चुकी है, वे परमात्मा को शरीर के अन्दर ढूंढते हैं। बाकी सब दुनिया के जीव भ्रमों में फँसकर यहीं भूले फिरते हैं। साईं बुल्लेशाह कहते हैं—

"बुल्ला शौह असाँ तो वख नहीं। बिन शौह थीं दूजा कख नहीं ।।
पर वेखण वाली अक्ख नहीं। ताँ जान जुदाइयाँ सहन्दी है ।।"

कबीर साहब ने तो बड़े ज़ोरदार लफ्ज़ों में हमारे खयाल को इस वहम और भ्रम से निकालने की कोशिश की है। आप समझाते हैं—

"कंकर पत्थर जोड़ कर, मसजिद लई चुनाय ।
ताँ चढ़ मुल्ला बाँग दे, बहरा भया खुदाय ।।
मुल्ला चढ़ किलकारिया, अलख न बहरा होय ।
जिस कारन तू बाँग दे, दिल ही अन्दर सोय ।।
तुरक मसीते हिन्दू देहरे, आप आप को धाए ।
अलख पुरख घट भीतरे, ता को लखा न जाए ।।"

पत्थर और ईंटें इकट्ठी करके हम मस्जिद या मालिक के रहने

की जगह बना लेते हैं और उनके ऊपर चढ़कर मौलवी ऊँची ऊँची बाँग देकर परमात्मा को पुकारता है, जैसे कि परमात्मा बहरा है और हमारी आवाज़ उस तक नहीं पहुँच सकती । आप समझाते हैं कि ऐ मुल्ला ! वह खुदा बहरा नहीं है । इतना चिल्लाने की क्या जरूरत है ? जिस खुदा के लिये तू इतने जोर-जोर से चिल्ला रहा है वह तो तेरे अन्दर ही मौजूद है । मुसलमान उस खुदा को मस्जिद के अन्दर ढूंढ रहे हैं । हिन्दू मन्दिरों में उस परमात्मा की तलाश कर रहे हैं सिक्ख और ईसाई गुरुद्वारों और गिरजों में जाकर खोज कर रहे हैं । लेकिन वह अलख पुरुष तो उनके शरीर के अन्दर ही है और अन्दर ही मिलेगा । इसी प्रकार तुलसी साहिब समझाते हैं—

"नकली मन्दिर मसजिदों में जाय सद अफसोस है,
कुदरती मसजिद का साकिन दुख उठाने के लिये ।"

साईं बुल्लेशाह क्या आज़ादी के साथ कहते हैं—

"भट नमाज़ाँ चिकड़ रोज़े कलमे दे सिर स्याही ।।
बुल्ले नूं शौह अंदरों मिलिया, भुली फिरे लोकाई ।।"

फिर फरमाया है—

"बेद कुरान पढ़ पढ थके, सिजदे करदिआँ घिस गए मत्थे
ना रब तीरथ ना रब मक्के, जिन पाया तिन दिल विच यार ।।

जो हमने परमात्मा के रहने के स्थान बनाये हैं, कितना अफ़सोस है कि हम उन स्थानों पर जाकर दिन-रात उस परमात्मा की खोज कर रहे हैं और जिस मस्जिद या शरीर के अन्दर वह परमात्मा खुद बैठा हुआ है, वह शरीर उस मालिक की याद में दिन-रात दुःख उठा रहा है । अगर कोई सच्चे से सच्चा गुरुद्वारा, मन्दिर, मस्जिद या गिरजा है तो वह केवल हमारा अपना शरीर है । कबीर साहिब का फरमान है—

"सब घट पूरन पूर रह्या है, आदि पुरख निरबानी ।।"

सेन्ट पॉल ने भी इस शरीर को जीवित परमात्मा का मन्दिर

कह कर पुकारा है । ऋषियों-मुनियों ने इसे नर-नारायणी देह कहकर समझाया है; वह देह जो परमात्मा ने खुद पैदा की है, जिसके अन्दर परमात्मा खुद बैठा हुआ है और जिस देह के अन्दर ही हमारी आत्मा को परमात्मा होने का फ़ख्र या गौरव प्राप्त हो सकता है । यही गुरु अमरदास साहिब समझाते हैं--

"हरि मंदर एहु सरीर है, गिआन रतन परगट होए ।।"

हमारा शरीर ही मालिक के रहने का असली हरि-मन्दिर है और उस मालिक का सच्चा ज्ञान उसी के अन्दर से प्राप्त हो सकता है । जरा गौर करके देखें कि उस परमात्मा के रहने के लिये जो स्थान हमने खुद बनाये हैं, जैसे मस्जिद, मन्दिर, गुरुद्वारे, गिरजे वगैरह, उनमें हम परमात्मा की खोज कर रहे हैं, बनिस्बत उस स्थान के जो परमात्मा ने खुद अपने रहने के लिये बनाया है और जिसमें वह खुद बैठा हुआ है । हम अपने इन धार्मिक स्थानों को कितना साफ-सुथरा रखते हैं । जरा गंदगी वहाँ नहीं रहने देते, धूप वगैरह जलाते हैं, वहाँ कोई बुरा कर्म या बुरी बात नहीं करते, किसी से कोई अनुचित शब्द तक नहीं कहते, क्योंकि हम समझते हैं कि यह मालिक के रहने का स्थान है । उन स्थानों की पवित्रता बनाये रखना चाहते हैं । लेकिन जो जगह मालिक ने खुद अपने रहने के लिये बनाई है और जिसके अन्दर वह परमात्मा खुद बैठा हुआ है--यानी हमारा शरीर--उसको किस प्रकार दिन-रात गन्दगी से भर रहे हैं । कभी माँस और शराब उसके अन्दर डालते हैं, कभी उसके अन्दर बैठकर बुरे-बुरे विचार उठाते हैं और पाप व खोटे कर्म करते हैं । अपनी बनाई हुई चीज़ की तो कदर करते हैं, जो मालिक ने खुद अपने रहने के लिये जगह बनाई है उसकी कदर नहीं करते । और कई बार तो इतिहास पढ़कर बड़ी शर्म महसूस होती है कि अगर हमारे बनाये हुए किसी मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे या गिरजे की, गलती से किसी दीवार में एक दरार भी आ जाती है, तो हम उस परमात्मा के बनाये हुए हरि-मन्दिरों को हजारों की संख्या में गिराने को तैयार हो जाते हैं ।

"हिन्दू कहत हैं राम हमारा, मुसलमान रहमाना ।
आपस में दोऊ लड़ मरत हैं, मरम कोई न जाना ।।"

(कबीर साहिब)

इतिहास बतलाता है कि इन धर्म-स्थानों को लेकर कितने युद्ध और झगड़े हुए, कितनी खून खराबियाँ हुई, कितने बच्चे अनाथ हुए, कितनी औरतें विधवा हुई । और हम इस पर फ़ख्र और गौरव का अनुभव करते हैं, अपने आप को धर्म के रक्षक, मज़हब के रखवाले समझते हैं और शहीदाने मिल्लत[1] कहलवाते हैं । अगर एक दूसरे की हत्या और खल्के खुदा[2] का खून बहाने से ही परमात्मा मिल सकता हो तो इससे ज्यादा सस्ता सौदा और आसान तरीका और क्या हो सकता है । लेकिन हमारा यह खयाल गलत है । जिनका परमात्मा से प्यार है वे परमात्मा की सृष्टि और उसके पैदा किये हुए मनुष्य से भी प्यार करते हैं । परमात्मा एक ही है और उस परमात्मा ने ही सबको पैदा किया है, हरएक के अन्दर वह खुद ही बैठा हुआ है और हरएक को अपने अन्दर ही उसकी खोज करना है, अगर फिर भी कोई किसी से नफरत करता है तो वह परमात्मा से नफरत करता है । अगर एक कौम दूसरी कौम को बुरा-भला कहती है और एक मज़हब दूसरे मज़हब वालों के खून का प्यासा है, तो मेरा अपना खयाल है कि उस कौम और मज़हब के अन्दर अभी तक मालिक से मिलने का शौक व प्यार ही पैदा नहीं हुआ, क्योंकि जिसका उस परमात्मा से प्यार है, वह परमात्मा की रचना और पैदाइश से भी जरूर प्यार करेगा । अगर हम किसी से नफरत करते हैं तो इसका मतलब हुआ कि हम उस परमात्मा से ही नफरत कर रहे हैं, जो कि उसके अन्दर बैठा हुआ है और जिसने उसे पैदा किया है । गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"जिअ जंत सभ तिसदे सभना का सोई ।।
मंदा किसनो आखीऐ जे दूजा होई ।।"

---

(१) धर्म के लिये शहीद । (२) परमात्मा की सृष्टि ।

कि हे परमात्मा ! 'सब दुनिया के जीव तेरे अपने पैदा किये हुए हैं और तू खुद ही हरएक के अन्दर बैठा हुआ है । नीच और बुरा तो मैं उसे कहूं जिसके अन्दर कोई और हो या जिसे किसी और ने पैदा किया हो । कबीर साहिब भी हमें यही उपदेश देते हैं—

"अव्वल अल्लह नूर उपाइया कुदरत के सभ बंदे ।।
एक नूर ते सब जग उपजिआ कौन भले को मंदे ।।"

इसी प्रकार बाइबिल में ईसा मसीह ने समझाया है, "वह सच्ची ज्योति जगत में आने वाले हरएक मनुष्य को प्रकाशित करती है ।" उस परमात्मा का नूर और प्रकाश हरएक के अन्दर है, न कोई बुरा है, न कोई अच्छा है, सब अपने-अपने कर्मों के अनुसार अपना-अपना हिसाब दे रहे हैं । इसलिये, महात्मा समझाते हैं कि उस परमात्मा की खोज और तलाश बाहर नहीं करनी चाहिये, अपने शरीर और देह के अन्दर ही खोज करनी चाहिये ।

हौमें की रुकावट

अब मन में स्वाभाविक ही यह विचार आता है कि अगर परमात्मा हरएक के अन्दर है तो हमें अपने अन्दर नजर क्यों नहीं आता ? हमारे अन्दर किस चीज़ की रुकावट है ? वह रुकावट हमारे अन्दर से किस प्रकार दूर हो सकती है ? गुरु अर्जुनदेवजी लिखते हैं—

"एका संगति इकतु गृह बसते मिल बात न करते भाई ।।
अंतर अलख न जाइ लखिआ विच परदा हौमें पाई ।।"

कि दोनों इकट्ठे ही रहते हैं और एक ही घर में दोनों का निवास है, लेकिन आपस में मिलाप नहीं है । आत्मा भी शरीर के अन्दर है, परमात्मा भी इस शरीर के अन्दर है, लेकिन न कभी आत्मा ने परमात्मा को देखा, न कभी आत्मा सुहागिन हुई । फिर खुद ही जवाब देते हैं कि परमात्मा ज़रूर हमारे शरीर के अन्दर है, लेकिन हमारे और मालिक के बीच हौमें या अहं की बड़ी जबरदस्त रुकावट है । गुरु नानक साहिब का कथन है—

"हौं विच आया, हौं विच गया, हौं विच जंमिआ, हौं विच मूवा ।।
हौं विच दिता, हौं विच लिया, हौं विच खटया, हौं विच गया ।।
हौं विच सचिआर कूड़िआर, हौं विच नरक स्वरग अवतार ।।"

फिर फरमाते हैं—

"हौमै दीरघ रोग है, दारू भी इस माहिं ।।
किरपा करे जे आपनी ताँ गुरु का सबद कमाहिं ।।"

और कहते हैं—

"जीवन मुकत सो आखिए जिस विचों हौमै जाए ।।"

कि हम जीते-जी मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं अगर हमारे अन्दर से हौमैं की रुकावट दूर हो जाये। गुरु अमरदासजी बयान करते हैं—

"हरि जीऊ सच्चा ऊंचो ऊँचा, हौमै मार मिलावणिआँ ।।"

वह परमात्मा सच्चा है, ऊँचे से ऊँचा है अर्थात् सचखण्ड का रहने वाला है, लेकिन जब तक हम हौमैं की रुकावट दूर नहीं करेंगे, उस परमात्मा से नहीं मिल सकते। यही दादू साहिब समझाते हैं—

"दादू दावा दूर कर, बिन दावे दिन काट ।
केते सौदा कर गये, पंसारी की हाट ।।"

हे दादू ! दुनिया में किसी चीज़ का दावा न कर। तेरा इस दुनिया में कुछ भी नहीं है। यह सब-कुछ उस परमात्मा का है। इसको परमात्मा का ही समझ, अपना बनाने की कोशिश न कर। न कभी ये किसी के बने हैं और न ही बन सकते हैं। दुनिया में बड़े बड़े राजा-महाराजा इस संसार को अपना बनाते बनाते चले गये, यह दुनिया उनकी न बन सकी। यह हमारा मोह और हौमैं ही है जो बार बार हमें इस देह के बन्धनों में लाता है। बाइबिल में ईसा मसीह ने भी जिक्र किया है, "मैं फिर तुमसे कहता हूँ कि परमेश्वर के राज्य में धनवान के प्रवेश करने की बनिस्बत ऊँट का सूई के नाके में से निकल जाना कहीं आसान है।" (मेथ्यू १९:२४)

सुई के नाके में से ऊँट का निकल जाना संभव नहीं, इसी तरह

अमीर और धनवान लोगों का जो कि दुनिया की दौलत और सुख में डूबे हुए हैं परमात्मा से मिलना असंभव है। बुल्ले शाह का भी यही कलाम है—

"दुई दूर करो कोई शोर नहीं, इहाँ तुरक हिन्दू कोई होर नहीं ।।
सब साध लखो कोई चोर नहीं, हरि घट घट बीच समाया है ।।"

इसी तरह कबीर साहिब फरमाते हैं—

"काम तजे तो क्रोध न जाई, क्रोध तजें तो लोभा ।
लोभ तजे अहंकार न जाई, मान बड़ाई शोभा ।।"

हौमें क्या है ? हम जो सारे दिन सोचते हैं कि यह मेरी औलाद है, मेरी जायदाद है, मेरी धन-दौलत है, ये सब-कुछ वास्तव में तो उस परमात्मा के हैं। हम अपने आप को उस परमात्मा से अलग समझे बैठे हैं, और इनको अपना बनाने की कोशिश करते हैं। लेकिन ये आज तक न किसी के बने, न कभी बन सकते हैं। हम इन्हें अपना बनाने की जो कोशिश करते हैं वह हमें इनके मोह व प्यार में उलझा देती है और हमारा इन शक्लों और पदार्थों के साथ इतना प्यार हो जाता है कि रात में हमें इनके ही सपने आने शुरू हो जाते हैं और मौत के समय इनकी ही शक्लें हमारी आँखों के सामने आकर सिनेमा की तस्वीरों की तरह फिरनी शुरू हो जाती हैं। जिस ओर भी आख़िरी वक्त हमारा ख़याल होता है, हम दुनिया के जीव उसी प्रवाह में बह जाते हैं। यह दुनिया की शक्लों और पदार्थों का मोह और प्यार है जो कि हरएक जीव को वार वार देह के बन्धनों की ओर खींचकर ले आता है। ईसा मसीह भी बाइबिल में कहते हैं, "और मनुष्य के बैरी उसके परिवार वाले ही होंगे" (मेथ्यू १०:३६)। फिर वे आगे बतलाते हैं कि हमारे सच्चे रिश्तेदार कौन हैं—"जो कोई मेरे परमपिता की इच्छा पर चले वही मेरा भाई, बहिन और माता है।" (मेथ्यू १२:५०)

हमारा मन

दुनिया की शक्लों और वस्तुओं से कौन प्यार किये बैठा है ?

यह हमारा मन है । इसलिये, अगर आत्मा और परमात्मा के बीच में कोई रुकावट और परदा है तो वह केवल हमारे मन का परदा है । गुरु नानक साहिब अपनी वाणी में लिखते हैं, "मन जीतै जग जीत ।" अगर हम अपने मन को वश में कर लेते हैं तो सारी दुनिया के बनाने वाले को ही वश में कर लेते हैं । दुनिया में अगर कोई हमारा दुश्मन है तो सिर्फ हमारा मन ही है । यह कभी किसी को अपना बनाता है, तो कभी किसी को बेगाना समझता है । अच्छी तरह विचार करके देख लें, यह सिर्फ हमारा मन ही है जिसके ताबे या वशीभूत होकर कौम कौम की दुश्मन है, मज़हब मज़हब का दुश्मन है, एक देश दूसरे देश को तबाह करना चाहता है, भाई भाई को देखना नहीं चाहता और लोग हमेशा एक-दूसरे के गले काटने की तरकीबें और उपाय सोचते रहते हैं । यह सब कुछ हमारा मन ही हमसे करवा रहा है । जब तक हम अपने मन को वश में नहीं करते हम वापस जाकर परमात्मा से मिलने के काबिल कैसे हो सकते हैं ।

मन को वश में करने का क्या मतलब है ? जिस प्रकार हमारी आत्मा उस परमात्मा का अंश है, इसी प्रकार हमारा मन भी कोई छोटी चीज़ नहीं है । यह ब्रह्म का अंश है, त्रिकुटी का रहने वाला है, लेकिन यहाँ माया के जाल में फँसकर अपने आपको भूल बैठा है । यहाँ आकर इसने आत्मा का साथ लिया हुआ है । आत्मा और मन की गाँठ बँधी हुई है । जब तक आत्मा मन का साथ नहीं छोड़ती, उसे कभी अपने आपका पता नहीं लग सकता और न कभी वह अपने असल या मूल से मिलने के योग्य हो सकती है । मन का साथ आत्मा उस समय ही छोड़ सकेगी जब मन वापस जाकर ब्रह्म या त्रिकुटी में अपने ठिकाने पर पहुँच जायेगा । हमें जो भी कोशिश करनी है, वह मन और आत्मा की गाँठ खोलने की करनी है । इसीलिये सुकरात ने कहा है, 'अपने आपको पहचानो ।' यही गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"सो जन निरमल जिन आप पछाता ॥"

वही व्यक्ति निर्मल और पवित्र है जो अपने आपको पहचानने

के योग्य बन जाता है। कबीर साहिब भी यही फरमाते हैं—

"साधो, सतगुरु अलख लखाया। जब आप आप दरसाया॥"

स्वामीजी महाराज भी फरमाते हैं—

"आप आपको आप पहचानो। कहा और का नेक न मानो॥"

अपने आपको पहचानने का मतलब यह है कि हमें मन और माया के दायरे से पार जाना है। हमें अपनी आत्मा पर से सूक्ष्म, स्थूल और कारण के तीनों गिलाफ या आवरण उतारने हैं और सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण—तीनों गुणों से पार होना है। तब जाकर अपने आप का पता लगेगा, अपने असल की पहचान होगी। हमारी आत्मा तो बिलकुल निर्मल, पवित्र और पाक थी, लेकिन मन का साथ लेने के कारण अति गन्दी और मैली हो चुकी है। उदाहरण के तौर पर, बादलों में पानी कितना साफ-सुथरा होता है, परन्तु जब वह बरसात बनकर ज़मीन पर आता है तो कितना गन्दा हो जाता है, उसमें से बदबू तक आनी शुरू हो जाती है। वह अपनी असलियत को बिलकुल भूल बैठता है और अपने आपको गन्दगी का ही रूप समझना शुरू कर देता है। परन्तु जब उसे फिर सूरज की तपिश लगती है और वह भाप बनकर उस गन्दगी को छोड़ता है तब उसे अपने आपका होश आता है कि मैं कौन हूँ। जब उसको अपने आपका पता लगता है तब फिर वह अपने असल या मूल के बारे में सोचता है और सीधा जाकर बादल में, अपने असल में ही समा जाता है। यही हमारी आत्मा की हालत है। यह माया के जाल में फँसकर मन के ताबे हो चुकी है, और मन आगे इन्द्रियों के भोगों का आशिक बन चुका है और जो जो कर्म मन करता है उसका नतीजा साथ-साथ आत्मा को भी भुगतना पड़ता है। जब तक यह मन का साथ नहीं छोड़ेगी, यह कभी भी अपने असल के अन्दर समाने के काबिल नहीं हो सकेगी। महात्मा चरनदासजी फरमाते हैं—

"इंद्रियन के बस मन रहे, मन के बस रहे बुद्ध।
कहो ध्यान कैसे लगे, ऐसा जहाँ विरुद्ध॥"

एक बिजली का तेज़ बल्ब चाहे कितनी ही रोशनी वाला क्यों न हो, परन्तु अगर हम उसके चारों ओर बहुत से काले कपड़े लपेटना शुरू कर दें तो उसकी रोशनी कम होते होते खत्म हो जायेगी। जैसे जैसे हम वे काले कपड़े उतारते जायेंगे, उसकी रोशनी और ज्योति प्रकट होना शुरू हो जायेगी और सब कपड़े उतर जाने पर उसकी रोशनी पूर्ण रूप से प्रकट हो जायेगी। इसी प्रकार, जैसे जैसे हमारी आत्मा मन का साथ छोड़ती जायेगी या मन के आवरण उस पर से उतरते जायेंगे वह अपने आपको पहचानने के काबिल बनती जायेगी। इसीलिए कहा है, परमात्मा के साक्षात्कार से पहले आत्म-साक्षात्कार होना ज़रूरी है।

हमें अब जो भी कोशिश करना है, जो कुछ भी तरीका सोचना है, वह अपने मन को वश में करने का ही सोचना है, मन को वापस ब्रह्म या त्रिकुटी में ले जाने की ही कोशिश करना है। हरएक धर्म का यही उद्देश्य है। हम दुनिया के जीव अपनी अपनी अक्ल के अनु-सार हज़ारों युक्तियों और तरीकों से मन को वश में करने की कोशिश करते हैं। जप-तप करते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, ग्रन्थ, पोथियाँ, वेद, शास्त्र आदि पढ़ते हैं, दान-पुण्य करते हैं, कई प्रकार के हवन वगैरह भी करते हैं। यहाँ तक कि घर-बार छोड़कर जंगलों-पहाड़ों में छिपकर बैठ जाते हैं। ये सब साधन सिर्फ मन को वश में करने के लिये ही करते हैं। हम हठ-कर्मों के द्वारा, नियम व संयम के द्वारा अपने खयाल को दुनिया से अलग करने की कोशिश करते हैं। लेकिन क्योंकि हमारा ख़याल और किसी चीज़ से जाकर नहीं जुड़ता इसलिये लौटकर दुनिया में ही भटकना शुरू कर देता है। दुनिया में से अपने खयाल को ज़बरदस्ती निकालना ऐसे ही है जैसे एक ज़हरीले साँप को किसी टोकरी या पिटारी में बन्द कर देना है। जितनी देर वह टोकरी के अन्दर बन्द रहता है, हम उसके ज़हर और दंश से बचे रहते हैं। लेकिन जब भी उसको निकलने का मौका मिलेगा, वह ज़रूर डसेगा, कभी भी अपनी आदत से बाज़ नहीं आ सकता। अतएव, एक साँप को टोकरी में बन्द कर देने से हम हमेशा के लिये

उसके जहर से निश्चिन्त नहीं हो सकते। हमें अपनी जान का खतरा लगा ही रहता है। अगर उसी साँप को पकड़कर उसकी विष की थैली ही निकाल दें, तो वह विष-हीन हो जाता है, डस नहीं सकता और हम हमेशा के लिये निर्भय हो जाते हैं, चाहे उसे अब अपने गले में डाले फिरें।

इसी प्रकार, हम जंगलों-पहाड़ों में छिपकर ग्रन्थ-पोथियाँ, वेद-शास्त्र पढ़कर, वाल-वच्चों को त्याग कर समझ लेते हैं कि हमारा मन वश में आ गया है। पर जिस समय दुनिया का सामना करना पड़ता है, वे ही इच्छाएँ और तृष्णाएँ जो हमारे अन्दर दबी पड़ी थीं, हमें फिर उँगलियों पर नचाना शुरू कर देती हैं, वल्कि सच तो यह है कि साधारण मनुष्यों से भी हमारी हालत गई-बीती हो जाती है। जितना ही हम मन को दवाते हैं, उतना ही वह विद्रोह करता है। ज़बरदस्ती मन को वश में करना ऐसा ही है जैसा कि सुलगते हुए कोयलों पर राख डाल देना। देखने में मालूम देता है कि आग बुझी हुई है लेकिन जव ज़रा भी हवा चलती है, वह राख उड़ जाती है और आग फिर से भड़क उठती है। इसी प्रकार, जव भोगों और विषयों की आँधी आती है तो यह मन फिर जागकर बेकाबू हो जाता है और पहले से ही ज्यादा मुँहज़ोर हो जाता है। ज़बरदस्ती मन को काबू करना ऐसे ही है जैसे हम किसी वदमाश को पुलिस के हवाले कर देते हैं। जब तक वह पुलिस की हिरासत में रहता है, तव तक हम उसकी शरारतों से ज़रूर वचे रहते हैं। लेकिन जव पुलिस उसे आज़ाद कर देती है, वह वस्ती में आकर फिर वैसी ही शरारतें शुरू कर देता है। अगर उस वदमाश को पुलिस के हवाले करने के वजाय हम समझा-बुझाकर एक शरीफ़ आदमी वना लेते हैं तो हम हमेशा के लिये उसकी शरारतों से बच जाते हैं। अतएव, महात्मा समझाते हैं कि हठ-कर्मों के द्वारा या संयम के द्वारा हम अपने मन को कभी भी वश में नहीं कर सकते। कुछ समय के लिये ज़रूर कुछ शान्ति या आराम प्राप्त कर लेंगे।

अगर हम मन को वश में करना चाहते हैं तो मन की आदत और स्वभाव को अच्छी तरह समझना ज़रूरी है। हमारा सबका अनुभव है कि मन लज़्ज़त या स्वादों का आशिक है। एक चीज़ से प्यार करता है, अगर दूसरी चीज़ या शक्ल उससे अच्छी दिखाई देती है तो पहली को छोड़कर दूसरी की ओर दौड़ना शुरू कर देता है। कोई भी मोह या प्यार हमेशा के लिये हमारे मन को बाँध कर नहीं रख सकता। हरएक का अपने अपने जीवन का अनुभव है कि वे शक्लें और वे पदार्थ जिन्हें हम किसी समय अपना बनाने की कोशिश करते थे और समझते थे कि उनके बगैर हमारा ज़िन्दा रहना ही मुश्किल या बिल्कुल असम्भव है, आज उन्हीं शक्लों से मन नफ़रत कर रहा है और उन्हें देखना तक गवारा नहीं करता। यह हम आम तौर पर कहते हैं कि मन विविधता का आशिक है। एक ही चीज़ को देख-देखकर, खा-खाकर हम ऊब जाते हैं। अपनी सारी ज़िन्दगी को आँखों के आगे रखकर गौर से देखें कि बचपन में हमारा माता-पिता से कितना प्यार था, अगर दो मिनिट भी माता हमारी आँखों से दूर हो जाती थी तो हम रोना और चीखना-चिल्लाना शुरू कर देते थे। पर जब दो-तीन भाई-बहिन हो जाते हैं तो वही माता का प्यार भाई-बहिनों के प्यार में बदलना शुरू हो जाता है। जब स्कूलों और कालेजों में जाते हैं, वही प्यार यारों-दोस्तों से हो जाता है। शादी के बाद पत्नी और बाल-बच्चों में जाकर समा जाता है। बूढ़े होते हैं तो कौमों, मज़हबों, मुल्कों तक में जाकर फैल जाता है। एक प्यार है, कितनी शक्लें बदलता है! लेकिन कोई भी प्यार हमारे मन को हमेशा के लिए बाँध नहीं सकता, क्योंकि हमारा मन लज़्ज़त का आशिक है। जितने समय तक हमारे मन को दुनिया की लज़्ज़त और मोह व प्यार से ऊँची और सच्ची लज़्ज़त, मोह या प्यार नहीं मिलता, वह दुनिया की लज़्ज़त व मोह-प्यार को किसी भी हालत में छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता।

वह लज़्ज़त किस चीज़ की है जिसे पाकर हमारा मन दुनिया के मोह और प्यार को छोड़ देगा? महात्मा अपना अनुभव बतलाते

हैं कि वह शब्द और नाम की लज्ज़त है। वह लज्ज़त इतनी ऊँची, पवित्र और निर्मल है कि उसे पाकर हमारा मन अपने आप ही दुनिया के मोह व प्यार को छोड़ देता है। जिसको हीरे और जवाहरात मिल जाते हैं, वह कौड़ियों के लिये दर-ब-दर ठोकरें नहीं खाता। लड़कियाँ गुड़ियों और खिलौनों से तब तक खेलती हैं जब तक उनकी शादी नहीं हो जाती। वैराग्य कभी भी हमारे अन्दर लगाव या आसक्ति पैदा नहीं कर सकता, सिर्फ लगाव ही हमारे अन्दर वैराग्य या अनासक्ति पैदा कर सकता है। अगर एक लड़की को शादी से पहले समझाया जाये कि माता-पिता का प्यार छोड़ दे, भाई-बहिनों, सखियों-सहेलियों को भूल जा ताकि तेरी शादी कर दें, तो यह उसके लिये कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव होगा। जब उसका अपने पति से प्यार हो जाता है तो माता-पिता, भाई-बहिन, सखियों-सहेलियों को आप ही भूल जाती है। एक कंगाल कौड़ियाँ माँगता फिरता है, उससे अगर हम एक कौड़ी भी छीनने की कोशिश करेंगे तो वह मरने-मारने को तैयार हो जायेगा। लेकिन जब हम उसके हाथ में अशर्फ़ी दे देंगे तो उसकी कौड़ियों वाली मुट्ठी अपने आप खुल जायेगी।

गुरु नानक साहिब मन के बारे में समझाते हैं—

"पाठ पढ़िओ अरु बेद बिचारिओ निवलि भुअंगम साधे ।।
पंच जना सिउँ संग न छुटकिओ अधिक अहम बुधि बाधे ।।
पिआरे इन बिधि मिलन ना जाई, मैं कीए करम अनेका ।।"

मन को वश में करने के लिये हमने अगिनत ग्रन्थों-पोथियों का पाठ किया, षट-दर्शन, अठारह पुराण, गीता-भागवत और वेदों-उपनिषदों पर भी विचार किया, प्राणायाम, नौलि कर्म और हठयोग की कठिन क्रियाएँ करके भी देखीं, कुण्डलिनी साधने का भी यत्न किया, लेकिन पाँच डाकुओं—काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार—से पीछा न छूटा। गुरु साहिब आगे समझाते हैं—

"मौनी भइग्रो कर पाती रहिग्रो नगन फिरिग्रो बन माहीं ।।
तट तीरथ सभ धरती भ्रमिग्रो दुबिधा छुटकै नाहीं ।।
मन कामना तीरथ जाइ बसिग्रो सिरि करवत धराए ।।
मन की मैल न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए ।।"

कि बोलना बन्द करके चुप भी रहे, घर-बार छोड़कर जंगलों-पहाड़ों में भी गये, कपड़े, बरतन वगैरह भी त्यागे ग्रौर सिर्फ हाथों में ही खाना खाया, धरती के सब तीर्थों में भी घूमे, सारी धरती की परिक्रमा भी की, ग्रौर भी ऐसे कितने ही कठिन साधन किये, पर फिर भी मन का मैल न उतरा। मन को वश में करने के लिये काशी जाकर करवत भी लिया ग्रर्थात् ग्रारे के द्वारा ग्रपने शरीर को चिरवा लिया। इस प्रकार के ग्रौर भी लाखों जतन किये पर मन की दुबिधा न गई। साईं बुल्लेशाह भी यही पुकार पुकार कर कहते हैं—

"न खुदा मसीते लभदा, न खुदा खाना काबे ।
न खुदा कुरान किताबाँ, न खुदा नमाज़े ।
न खुदा मैं तीरथ डिठा, ऐवें पैंडे झाके ।[१]
बुल्ला शाह जद मुरशद मिल गया मिटे सब तगादे ।"

मन को वश में करने का तो सिर्फ एक ही उपाय है कि इसे शब्द या नाम की लज्ज़त दी जाये। जैसे जैसे यह शब्द ग्रौर नाम का स्वाद पायेगा, वैसे ही इसका दुनिया से मोह ग्रौर प्यार टूटना शुरू हो जाएगा। शब्द की कशिश ग्रौर लज्ज़त इसे दुनिया से ग्रलग कर देगी। स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"कोट जतन से यह नहिं माने। धुन सुनकर मन समझाई ।।
जोगी जुक्ति कमावें ग्रपनी। ज्ञानी ज्ञान कराई ।।
तपसी तप कर थाक रहे हैं। जती रहे जत लाई ।।
ध्यानी ध्यान मानसी लावें। वह भी धोखा खाई ।।
पंडित पढ़ पढ़ वेद वखाने। विद्या वल सव जाई ।।

(१) यों ही व्यर्थ भटका ।

बुद्धि चतुरता काम न आवे । आलम रहे पछताई ।।
और अमल का दखल नहीं है । अमल शब्द लौ लाई ।।
गुरु मिले जब धुन का भेदी । शिष्य विरह धर आई ।।
सुरत शब्द की होय कमाई । तब मन कुछ ठहराई ।।"

एक और शब्द में स्वामीजी महाराज उपदेश देते हैं—

"सोता मन कस जागे भाई । सो उपाव मैं करूँ बखान ।।
तीरथ करे वर्त भी राखे । विद्या पढ़ के हुए सुजान ।।
जप तप संजम बहु विधि धारे । मौनी हुए निदान ।।
अस उपाव हम बहुतक कीन्हे । तो भी यह मन जगा न आन ।।
खोजत खोजत सतगुरु पाए । उन यह जुक्ति कही परमान ।।
सतसंग करो संत को सेवो । तन मन करो कुरबान ।।
सतगुरु शब्द सुनो गगना चढ़ । चेत लगाओ अपना ध्यान ।।
जागत जागत अब मन जागा । झूठा लगा जहान ।।
मन की मदद मिली सूरत को । दोनों अपने महल समान ।।
बिना शब्द यह मन नहिं जागे । करो चाहे कोई अनेक विधान ।।"

एक अन्य शब्द में स्वामीजी महाराज अच्छी तरह से समझाते हैं—

"जिन्होंने मार मन डाला । उन्हीं को सूरमा कहना ।।
बड़ा बैरी यह मन घट में । इसी का जीतना कठिना ।।
पड़ो तुम इस ही के पीछे । और सब ही जतन तजना ।।
गुरु की प्रीत कर पहिले । बहुरि घट शब्द को सुनना ।।
मान दो बात यह मेरी । करे मत और कुछ जतना ।।"

गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"सच्चे नाम सदा मन सच्चा । सच सेवे दुख गवावणिआँ ।।"

कि सिर्फ सच्चे शब्द और सच्चे नाम की कमाई करके ही हमारा मन निर्मल, पवित्र और पाक हो सकता है । सच्चे शब्द की कमाई करके ही हम चौरासी के दुःखों से बच सकते हैं । आप एक और बहुत अच्छा दृष्टान्त देते हैं—

"गुरुमुख गारुड जे सुने, मंने नावों संतोष ।।"

अगर किसी को साँप डस लेता है तो उसके इलाज के लिये, उसका ज़हर उतारने के लिये किसी डाक्टर के पास जाते हैं। उसकी दवा के द्वारा साँप का ज़हर उतर जाता है। इसी प्रकार, अगर हम मन रूपी साँप का ज़हर अपने अन्दर से निकालना चाहते हैं तो हमें सन्तों के पास जाकर अपने खयाल को शब्द और नाम के साथ जोड़ना होगा। मन को वश में करने का और कोई इलाज या तरीका नहीं है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं--

"राम नाम मन बेधिआ अवर कि करी विचार ।।"

यह हमारा मन जो विषयों-विकारों में, दुनिया के मोह और प्यार में फँसकर हिरन की तरह भटकता फिरता है, जब राम नाम के साथ जुड़ जाता है तो हमेशा के लिए बिंध जाता है। और कोई विचार करना या इस मन को वश में करने का और कोई उपाय करना व्यर्थ है। यही स्वामीजी महाराज समझाते हैं--

"सुरत शब्द कमाई करना । सब जतन दूर अब धरना ।।"

सच्चा नाम

सभी सन्तों ने अपनी वाणी में नाम या शब्द की महिमा की है। हमारे जितने भी मज़हब हैं, हरएक के रीति-रिवाज या शरीयतें अपनी अपनी अलग-अलग हैं। लेकिन जो असली रूहानियत है, सत्य का मूल रूप है, रूहानियत की जड़ है वह हरएक मज़हब की तह में एक ही है और सन्त-महात्मा हमारे अन्दर सिर्फ इस रूहानियत को ही प्राप्त करने का शौक व प्यार पैदा करते हैं, उसी की प्राप्ति का तरीका या साधन समझाते हैं। इस रूहानियत को भिन्न-भिन्न महात्माओं ने विभिन्न जातियों, धर्मों और देशों में आकर भिन्न-भिन्न लफ्ज़ों या शब्दों में समझाने की कोशिश की है। ऋषि-मुनि इसको राम नाम, राम-धुन, निर्मल नाद, दिव्य-ध्वनि या कई और शब्दों से याद करते हैं। गुरु नानक साहिब इसे आम तौर पर 'शब्द' या 'नाम'

कहकर याद करते हैं । वे इसी को गुरु की वाणी, धुर की वाणी, सच्ची वाणी, अमर, हुक्म, अकथ कथा, हरि कीर्तन, और निर्मल नाद कहकर भी याद करते हैं । मुसलमान फ़कीर इसे कलमा, इस्मे-आज़म, बाँगे-सुलतानी, कलामे-इलाही या सुलतान-उल-अज़कार कहते हैं । ईसा ने इसे 'वर्ड' या 'लोगास' कहा है । इसे ऋग्वेद में 'वाक्' कहा गया है—"यावत् ब्रह्म श्रेष्ठम् तावती वाक्" अर्थात् शब्द इतना महान है जितना कि ब्रह्म । सतपथ ब्राह्मण में आता है, "वाक् एव ब्रह्म" अर्थात् शब्द ही ब्रह्म है ।

हमें लफ्ज़ों के साथ कोई विवाद नहीं है । हमें तो उस रूहानियत की खोज करना है जिसकी हर महात्मा महिमा करता है और जिसको पाकर हमारा मन बींधा जा सकता है, वश में आ जाता है और वापस जाकर अपने ठिकाने पर पहुँच जाता है । जब तक हमें यह समझ न आये कि महात्मा शब्द, नाम, वाक या वाणी किसको कहते हैं, वह किस जगह है, किस प्रकार हमें उसके साथ अपना खयाल जोड़ना हैं और उसकी हमें क्या ज़रूरत है, तब तक हम बेशक किसी भी महात्मा की वाणी या ग्रन्थ-पोथी पढ़ते रहें, हम कभी भी उससे पूरा-पूरा फायदा नहीं उठा सकते ।

महात्माओं की वाणी में जगह-जगह सच्चे शब्द, सच्चे नाम या सच्ची वाणी का जिक्र आता है । गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"सच्चे सबद सच्ची पत होई ।।"

इससे मन में यह विचार ज़रूर आता है कि शायद और भी कोई वाणी, शब्द या नाम ऐसा है जो सच्चा नहीं है । सच्चे शब्द का मतलब उस वाणी, शब्द या नाम से है जो कभी नष्ट नहीं होता, फ़ना नहीं होता । महात्मा समझाते हैं कि शब्द या नाम दो प्रकार का है । एक वर्णात्मक शब्द है, दूसरा धुनात्मक । वर्णात्मक शब्द हम उसे कहते हैं जो हमारे लिखने, पढ़ने और बोलने में आता है । हमने अपने-अपने प्यार में आकर उस परमात्मा के जितने भी नाम रखे हुए हैं, अल्लाह, वाहिगुरु, राधास्वामी, हरिओम्, परमात्मा,

परमेश्वर आदि, ये सब हमारे वर्णात्मक शब्द हैं, क्योंकि ये लिखने, पढ़ने और बोलने में आते हैं। हमारे कई मुल्क हैं, हर मुल्क में वहाँ की कई कई भाषाएँ या बोलियाँ हैं और एक एक बोली में हम कितने ही लफ्ज़ों के द्वारा उस परमात्मा को याद करते हैं। हज़ारों, अनेकों महात्मा संसार में आये हैं और हज़ारों अनेकों ही अभी आयेंगे। उन्होंने अनेकों लफ्ज़ों के द्वारा उस परमात्मा को याद किया है और अनेकों ही लफ्ज़ों के द्वारा अभी याद करेंगे। पिछले रखे हुए नाम हम भूलते जाते हैं और अपने प्यार में आकर कई और नाम रखते चले जा रहे हैं। हरएक नाम का हम इतिहास बतला सकते हैं या उसकी तहकीकात अथवा खोज कर सकते हैं और उसका समय निश्चित कर सकते हैं। स्वामीजी महाराज को आये सिर्फ सौ वर्ष हुए हैं, उनके आने के बाद हमने उस मालिक को 'राधास्वामी' कहना शुरू कर दिया। परन्तु इस बात का हम कभी विचार ही नहीं करते कि स्वामीजी महाराज के आने से पहले भी हम दुनिया के जीव यहीं थे, और वही मालिक था और हम किन्हीं और लफ्ज़ों से उस मालिक को याद करते ही थे। इसी प्रकार, श्री गुरु नानकदेवजी के आने के बाद हमने उस परमात्मा को 'वाहिगुरु' कह कर पुकारना शुरू कर दिया। लेकिन आपको भी आये केवल पाँच सौ वर्ष हुए हैं। मुहम्मद साहिब के आने के बाद हम उस मालिक को 'अल्लाह' कह कर याद करने लगे। उनको भी आये हुए अधिक समय नहीं हुआ, सिर्फ चौदह सौ साल हुए हैं। और इसी तरह रामचन्द्रजी महाराज के आने के बाद उस मालिक को हम 'राम राम' कह कर पुकारने लगे। आपको आये दस हज़ार साल या इससे भी ज्यादा समय हुआ होगा। तात्पर्य यही है कि हरएक लफ्ज़ की तारीख बतायी जा सकती है, समय या मियाद तय की जा सकती है।

वर्णात्मक शब्द भी चार प्रकार के हैं, वैखरी, मध्यमा, पश्यंती और परा। पहला वह जो ज़बान से बोला जाता है, जैसे हम हर रोज एक-दूसरे से बातचीत करते हैं! दूसरा वह जो कण्ठ में धीरे-धीरे बोलते हैं। तीसरा हृदय में और चौथा वह जो नाभि में योगी-जन

हिलोर उठाते हैं। ये सभी शब्द वर्णात्मक हैं और इनमें से कोई भी सच्चा नाम नहीं है। स्वामीजी महाराज अपनी वाणी में फरमाते हैं--

"नाम निर्णय करूँ भाई। दुधा विधि भेद बतलाई ।।
वर्ण धुनात्मक गाऊँ। दोऊ का भेद दरसाऊँ ।।
वर्ण कहु चाहे कहु अक्षर। जो बोला जाय रसना कर ।।
लिखन और पढ़न में आया। उसे वर्णात्मक गाया ।।"

जो नाम लिखने, पढ़ने और बोलने में आता है, जिसकी अवधि तय की जा सकती है और तारीख बताई जा सकती है उसे महात्मा वर्णात्मक शब्द कहते हैं। जिस नाम की हरएक महात्मा महिमा करता है, जिस नाम की कमाई से हमें मुक्ति प्राप्त करना है, मन को वश में करना है, आत्मा तथा मन की गाँठ को खोलना है और अपने आपको पहचान कर मालिक को पहचानने के योग्य बनना है वह धुनात्मक नाम है, सच्चा नाम है। महात्मा केवल उस सच्चे नाम की ही महिमा करते हैं। वह सच्चा नाम न लिखने में आता है, न पढ़ने में और न बोलने में। उसको हुज़ूर महाराजजी[1] बिना लिखा कानून (अनरिटन लॉ) और अन-बोली वाणी (अनस्पोकन लेंग्वेज) कह कर समझाया करते थे। ईसा मसीह ने भी बाइबिल में उसी नाम का इशारा किया है। वे कहते हैं, "क्योंकि वे देखते हुए भी नहीं देख पाते और सुनते हुए भी नहीं सुन पाते" (मेथ्यू १३:१३)।

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब उस नाम की महिमा करते हैं—

"अखीं बाझहु वेखणा विणु कन्ना सुनणा ।।
पैराँ बाझहु चलणा विणु हत्थां करणा ।।
जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा ।।
नानक हुकम पछाणि कै तउ खसमै मिलणा ।।"

इस शब्द को न तो बाहर की आँखें देख सकती हैं, न कान सुन सकते हैं, न उस जगह हमारे ये पैर हमें लेकर पहुँच सकते हैं, न वह चीज़ इन हाथों से पकड़ी जा सकती है। उस वस्तु को प्राप्त करने के

---

१. हुज़ूर महाराज बाबा सावनसिंहजी।

लिये और उसे प्राप्त करके परमात्मा से मिलने के लिए हमें जीते-जी मरना पड़ता है। ये जितने भी हमारे लफ्ज़ हैं, वर्णात्मक नाम हैं, ये हमारे ज़रिये, साधन या उपाय हैं और वह सच्चा नाम हमारा ध्येय और लक्ष्य है। इन लफ्ज़ों के प्यार में उलझ कर हमें कोई कौम, मज़हब और मुल्क के झगड़े खड़े नहीं करना है, बल्कि इन लफ्ज़ों के ज़रीये उस सच्चे शब्द और सच्चे नाम की खोज करनी है। लेकिन हम दुनिया में क्या देखते हैं ? कोई परमात्मा को वाहिगुरु कहकर याद करता है, वह अपने आपको सिक्ख समझना शुरू कर देता है। कोई अल्लाह कहकर पुकारता है, वह मुसलमान बन जाता है। कोई राम कहता है, वह हिन्दू कहलाना शुरू कर देता है। और हमारा एक दूसरे से मिलना-जुलना भी मुश्किल हो जाता है। हम इस बारे में कभी नहीं सोचते कि हमारे लफ्ज़ हमारे ध्यान या ख़याल को किस ओर ले जाते हैं। अगर आज हमारा ख़याल उस सच्चे शब्द से जुड़ जाता है तो दुनिया के सब झगड़े खत्म हो जाते हैं। यह पहले अर्ज़ किया जा चुका है कि हमारी न कोई कौम है, न मज़हब है और न कोई मुल्क। ये झगड़े तब तक ही हैं जब तक कि हम सच्चे शब्द को भूले बैठे हैं और इन लफ्ज़ों से प्यार लगाये बैठे हैं। हरएक महात्मा हमें इन लफ्ज़ों के भ्रमों से निकाल कर उस सच्चे शब्द से जोड़ने के लिये आता है। जिस प्रकार माता प्यार में आकर अपने बेटे को कई लफ्ज़ों से याद करती है, लेकिन माता का जो बेटे से रिश्ता है वह कोई लफ्ज़ों का रिश्ता नहीं, बल्कि प्यार का रिश्ता है। ये लफ्ज़ तो सिर्फ माता के प्यार को प्रकट करते हैं, उसका वर्णन करते हैं। वह प्यार तो अपने आप में कोई और चीज़ है और ये लफ्ज़ कोई और चीज़ हैं। इसी प्रकार मालिक के भक्तों और प्यारों ने कई लफ्ज़ों के द्वारा उस परमात्मा को याद किया है। असल में उस मालिक का कोई नाम नहीं है। जैसा कि कहा है—'

"बनामे ऊ के ऊ नामे नदारद,
बहर नामे के ख्वानी सर बर आरद"

अर्थात् उसके नाम से शुरू करता हूँ जिसका कि कोई नाम नहीं;

जिस नाम से बुलाओ, वह जवाब देता है । ये लफ्ज़ तो मालिक के भक्तों और प्रेमियों के प्यार को प्रकट करते हैं । ये सब लफ्ज़ वर्णात्मक शब्द हैं । जो आत्मा का परमात्मा से प्यार है, वह सच्चा शब्द और सच्चा नाम है । उस सच्चे शब्द और सच्चे नाम का कोई इतिहास नहीं बतलाया जा सकता और न ही उसका कोई समय निश्चित किया जा सकता है, क्योंकि उस सच्चे शब्द ने दुनिया की रचना की है, उसके आधार पर हमारे खण्ड-ब्रह्माण्ड चल रहे हैं और हम सब को उसका ही आसरा है । गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"उतपति परलै सबदे होवै ।।
सबदे ही फिर ओपत होवै ।।"

शब्द ने ही इस दुनिया की रचना की है । और जिस दिन परमात्मा उस शब्द की ताकत को इस दुनिया से खींच लेगा, यहाँ प्रलय और महाप्रलय हो जायेगा । यह जितनी भी दुनिया की रचना है, सब पाँच तत्वों की बनी हुई है । ये हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश । हरएक वस्तु में कोई न कोई तत्त्व मौजूद है । ये पाँचों ही तत्त्व एक दूसरे के दुश्मन हैं, लेकिन शब्द के कारण और शब्द के आसरे ही ये एक दूसरे का साथ दे रहे हैं । जिस दिन परमात्मा उस शब्द की ताकत को दुनिया से निकाल लेता है, पृथ्वी पानी में घुल जाती है, पानी को अग्नि खुश्क कर देती है, अग्नि को हवा उड़ा ले जाती है और हवा को आकाश खा जाता है और इस सारी दुनिया में धुन्धुकार छा जाता है । उदाहरण के तौर पर, हमारा यह शरीर पाँच तत्त्वों का पुतला है । जब तक उस शब्द की किरण हमारे अन्दर है हम दुनिया में किस तरह दौड़ते फिरते हैं । जिस दिन उस शब्द की किरण या आत्मा को परमात्मा शरीर से निकाल लेता है, हमारा सारा शरीर यानी ये पाँचों तत्त्व बेकार हो जाते हैं, ये पाँच तत्त्व पाँच तत्त्वों में ही जाकर मिल जाते हैं और हमारी हस्ती खत्म हो जाती है । इसी तरह महात्मा समझाते हैं कि उस शब्द के ही आधार पर सारी दुनिया चल रही है । गुरु अर्जुनदेवजी फरमाते हैं—

"नाम के धारे सगले जंत । नाम के धारे खंड ब्रहमंड ।।
नाम के धारे आगास पाताल । नाम के धारे सगल आकार ।।"

इसी प्रकार गुरु अमरदासजी लिखते हैं, "नामै ही ते सभ किछु होआ" अर्थात् जो कुछ भी हम दुनिया में देखते हैं सब नाम ने ही पैदा किया है । बाइविल में सेंट जॉन का कथन है, "आदि में शब्द था और शब्द परमेश्वर के साथ था । यही आदि में परमेश्वर के साथ था । सव कुछ उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ और जो कुछ उत्पन्न हुआ है उसमें से कोई भी वस्तु उसके बिना उत्पन्न नहीं हुई ।" (जॉन १: १, २, ३)

ऋषि मुनि भी वेदों-शास्त्रों में यही उल्लेख करते हैं कि परमात्मा ने आकाशवाणी के द्वारा संसार की रचना की है । कुरान शरीफ़ में आया है कि उस कलमे या कुन के ज़रिये मालिक ने दुनिया पैदा की । चीन के दर्शनशास्त्रों में भी यही उल्लेख है कि 'टाओ' ने दुनिया की रचना की । गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"सबदे धरती सबदे आकास । सबदे सबद भया परगास ।।
सगली सृसटि सबद के पाछे । नानक सबद घटे घट आछे ।।"

शम्स तब्रेज़ भी कहते हैं—

"आलम अज सौते ईं जहूर गरिफ्त,
ाज़ हज़ूरश बिसाते नूर गरिफ्त ।"[1]

हम खुद ही अनुमान लगा सकते हैं कि जिस ताकत ने दुनिया की रचना की हो उसका क्या इतिहास हो सकता है, क्या समय और क्या अवधि तय की जा सकती है ! उसका समय और उसकी अवधि तो कोई हो ही नहीं सकती ।

हमें मुक्ति प्राप्त करने के लिये उस सच्चे शब्द की जरूरत है । वह सच्चा शब्द परमात्मा ने सव मनुष्यों के अन्दर रखा है । जब तक

---

१ इस आवाज़ से आलम या संसार प्रकट हुआ, इसकी उपस्थिति से नूर की चादर प्राप्त हुई ।

हम अपने शरीर के अन्दर उसकी खोज करके अपने ख़याल को उस सच्चे शब्द से नहीं जोड़ते, अपने आपको उसमें जज़्ब और लवलीन नहीं करते, हम कभी भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"सच्चे सबद सच्ची पत होई। बिन नामे मुकति न पावे कोई ॥"

तीसरी पादशाही गुरु अमरदासजी फरमाते हैं—

"सबद न जानहि से अन्हे बोले, से कित आए संसारा ॥"

और

"बिन सबदै अंतर आन्हेरा। न वस्तु लहै न चूकै फेरा ॥"

जब तक हम उस शब्द की खोज नहीं करते, हमारे अन्दर से अज्ञान का अँधेरा कभी दूर नहीं हो सकता, न परमात्मा ही मिल सकता है और न कभी देह के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त हो सकता है।

"शबद मरे सोई जन पूरा। सतगुरु आख सुनाए सूरा ॥"

हज़रत ईसा भी बाइबिल में कहते हैं "अगर तुम मेरे शब्द से जुड़े रहते हो तो मेरे सच्चे शिष्य हो; तभी तुम सच को जान सकोगे और वह सच तुम्हें आज़ाद कर देगा।" (जॉन, ८: ३१, ३२) आगे फिर कहते हैं कि उस नाम की कमाई के बिना तो मालिक की और कोई भक्ति ही नहीं है। बाइबिल में कथन है, "परमात्मा एक चेतन सत्ता (शब्द) है और जो उसे पूजना चाहें उन्हें चाहिये कि सच्चे और चेतन होकर उसे पूजें।" (जॉन, ४:२४) कबीर साहिब समझाते हैं—

"जब भी नाम हिरदे धरयो, भयो पाप को नास।
जैसे चिनगी आग की, पड़ी पुरानी घास ॥"

जिस समय हमारे हृदय में नाम प्रकट हो जाता है, हमारे सब कर्मों का सिलसिला ख़त्म हो जाता है, जिनकी वजह से हम देह के बन्धनों में फँसे हुए हैं। जिस तरह एक सूखे घास का ढेर चाहे कितना ही बड़ा क्यों न हो, आग की एक चिनगारी उस पूरे ढेर को जलाकर

खाक कर सकती है, इसी तरह हम संसारी और मनमुख पुरुषों के कितने भी बुरे और खोटे पाप क्यों न हों, यह नाम की कमाई हमारे सब कर्मों का हिसाब खत्म कर देती है। दरिया साहिब फरमाते हैं—

"दरिया सुमिरै राम को, करम भरम सब खोय ।
पूरा गुरु सिर पर तपे, विघन न लागे कोय ।।"

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"आन आन समिधा बहु कीनी पल बैसंतर भसम करीजै ।
महा उग्र पाप साकत नर कीन्हे मिल साधू लूकी दीजै ।।"

स्वामीजी कहते हैं—

"शब्द करम की रेख कटावे । शबद शबद से जाय मिलावे ।।"

हजरत ईसा मसीह भी बाइबिल में कहते हैं—"जो शब्द मैंने तुमसे कहा है उसके द्वारा तुम अब शुद्ध हो गये हो" (जॉन, १५:३)। अर्थात् मैंने जो सच्चा शब्द तुम्हें दिया है उसने तुम्हारे सब पाप धो डाले हैं। कबीर साहिब तो नाम की यहाँ तक महिमा करते हैं—

"नाम जपत कोढ़ी भला, चुइ चुइ पड़े जिस चाम ।
कंचन देह किस काम की, जा मुख नाहीं नाम ।।"

कि अगर कोई कोढ़ी भी है जिसके शरीर से पानी बह रहा है, पर उसका खयाल अन्दर शब्द या नाम के साथ जुड़ा हुआ है, तो वह उस व्यक्ति से कहीं अच्छा है जो कि सब दुनिया के ऐशो-आराम लेकर बैठा है, मगर परमात्मा को भूले हुए है।

जिस सच्चे नाम की महात्मा इतनी महिमा करते हैं, वह नाम कहीं बाहर नहीं है, हमारे शरीर के अन्दर ही है। गुरु अमरदास साहिब समझाते हैं—

"शरीरों भालण को बाहर जाए ।
नाम न लहे बहुत वगार दुख पाए ।।"

शरीर के बाहर जो उस नाम को ढूंढने की कोशिश करते हैं वे बेगारियों की तरह अपने कीमती समय को खराब करते हैं। बेगारी सारा दिन मेहनत करता है, टूट-टूटकर मरता है, अपना खून पसीना एक करता है, लेकिन आखिर में उसके पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता। अगर कोई चीज़ हमारे घर के अन्दर है तो बाहर खोजने से वह कैसे मिल सकती है ?

सुमिरन और ध्यान

हमारा रूहानी सफ़र पैरों के तलवों से लेकर सिर की चोटी तक है और इस सफ़र की दो मंजिलें हैं। एक आँखों तक है और दूसरी आँखों के ऊपर। हमारे शरीर के अन्दर आत्मा और मन का जो केन्द्र या स्थान है, वह हमारी आँखों के पीछे है; जिसका मुसलमान फकीरों ने नुक्ताए-सुवैदा कहकर वर्णन किया है, हज़रत ईसा ने जिसे घर का दरवाज़ा कहकर समझाया है। ऋषियों-मुनियों ने उसका वर्णन शिव-नेत्र और दिव्य-चक्षु कहकर किया है। गुरु नानक साहिब उसे तिल या तीसरा तिल कहते हैं। अगर हम कोई बात भूल जायें और उसे याद करना चाहें तो हमारा हाथ अपने आप ही स्वाभाविक तौर पर माथे पर आकर टिक जाता है। कभी भी हम किसी भूली हुई चीज़ को याद करने के लिये लातों-पैरों पर हाथ नहीं टिकाते। आँखों के बीच व पीछे के स्थान का हमारे सोचने-विचारने के साथ बड़ा गहरा सम्बन्ध है। हरएक मनुष्य का ख़याल यहाँ से उतर कर नौ द्वारों के ज़रिये तमाम दुनिया के अन्दर फैल रहा है। गुरु रामदास साहिब फरमाते हैं—

"मन खिन खिन भरम भरम बहु धावे। तिल घर नहीं वासा पाइए ।।"

और

"गुर अंकुस सबद दारू सिर धारियो, घर मंदर आन वसाइऐ ।।"

कि हमारा ख़याल तीसरे तिल से उतर कर पल-पल सारी दुनिया में फैलता जाता है और मन एक क्षण के लिये भी आँखों के पीछे नहीं

ठहरता। जब तक यह आँखों के पीछे नहीं ठहरता तब तक यह अपने घर त्रिकुटी में जाकर नहीं समा सकता।

हमारे शरीर में ये नौ दरवाजे हैं—दो आँखें, दो कान के छिद्र, दो नाक के छिद्र, मुँह और नीचे दो इन्द्रियों के छिद्र। इन नौ द्वारों के ज़रीये हमारा ख़याल सारी दुनिया में फैलता है। कितनी ही अँधेरी कोठरी के अन्दर जाकर क्यों न बैठ जायें, बाहर कितने ही ताल क्यों न लगे हों, हमारा मन वहाँ नहीं होगा, बाहर सारी दुनिया में फैला हुआ होगा। हमारे मन को दलीलें करने की और सोचने की जो आदत पड़ी हुई है, इसको महात्मा सुमिरन करना कहते हैं। सुमिरन करने की हरएक मनुष्य को कुदरती आदत है। और जिसके बारे में हम सुमिरन करते हैं उसकी शक्ल भी हमारी आँखों के सामने आकर खड़ी हो जाती है। अगर बच्चों का सुमिरन करते हैं अर्थात् अगर उनकी याद आती है, तो बच्चों की शक्लें आँखों के आगे फिरनी शुरू हो जाती हैं। अगर घर के कारोबार के बारे में ख़याल आता है तो घर के कारोबार आँखों के आगे फिरना शुरू हो जाते हैं। इसको महात्मा ध्यान करना कहते हैं। जिसका हम सुमिरन करते हैं उसका ही ध्यान भी करना शुरू कर देते हैं। जिन-जिन शक्लों और पदार्थों का सुमिरन और ध्यान पकता जाता है, उनके साथ हमारा मोह और प्यार भी पैदा हो जाता है। सुमिरन और ध्यान के द्वारा हम उनके साथ इतना लगाव और प्यार पैदा कर लेते हैं, मन का उनके साथ इतना लगाव और मोह हो जाता है कि रात को हमें सपने भी उनके ही आने शुरू हो जाते हैं। मौत के वक्त उनका ही ख़याल हमारी आँखों के आगे आकर खड़ा हो जाता है और मौत के समय जिस ओर भी हमारा ख़याल होता है उसी रौ में हम बहना शुरू कर देते हैं। 'जहाँ आसा तहाँ वासा', मौत के बाद उस मोह के बँधे हुए हम वापस वहीं जाकर जन्म लेते हैं। संसार की शक्लों और पदार्थों का प्यार वापस हमें संसार में ही ले आता है।

महात्मा समझाते हैं कि सुमिरन और ध्यान की हमें स्वाभाविक आदत पड़ी हुई है। इसलिये, इस स्वाभाविक आदत से फ़ायदा उठाओ

श्रौर दुनिया के सुमिरन श्रौर ध्यान के स्थान पर मालिक के नाम का सुमिरन श्रौर ध्यान करो, क्योंकि सुमिरन सुमिरन को काटेगा श्रौर ध्यान ध्यान को निकालेगा। पानी की मारी हुई खेती पानी से ही हरी-भरी होती है। दुनिया की नाशवान चीज़ों का सुमिरन करके हम उनसे मोह श्रौर प्यार किये बैठे हैं। उनमें से कोई भी चीज़ हमारा साथ देने वाली नहीं है। उनका मोह श्रौर प्यार हमें बार-बार देह के बन्धनों की श्रोर ले श्राता है। हमें चाहिये कि उस मालिक के नाम का सुमिरन श्रौर ध्यान करें जो कभी फ़ना नहीं होता, जिसका हमारी श्रात्मा श्रंश है श्रौर जिसमें जाकर वह समाना चाहती है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"निहचल एक श्राप श्रबिनासी। सो निहचल जो तिसे धिश्राइन्दा।।"

वह परमात्मा निश्चल है। वह कभी जन्म श्रौर मरण के दुःखों में नहीं श्राता। जो उसका ध्यान करते हैं, उससे प्यार करते हैं, उसका सुमिरन करते हैं, वे भी निश्चल हो जाते हैं। उनका भी जन्म श्रौर मरण के दुःखों से छुटकारा हो जाता है।

हमें श्राँखों के पीछे श्रपना ख़याल जमाकर परमात्मा के नाम का सुमिरन करके श्रपने फैले हुए ख़याल को वापस इकट्ठा करके इसी केन्द्र पर एकाग्र करना है। यह इतना सरल श्रौर श्रासान तरीका है कि छोटे बच्चे से लेकर बूढ़े तक इसे श्रासानी से कर सकते हैं, क्योंकि सुमिरन करने की श्रादत तो स्वाभाविक ही सब को पड़ी हुई है। हमें दुनिया का सुमिरन करने की इस श्रादत का फायदा उठाकर उस मालिक के नाम के सुमिरन में मन को लगाना है। जब सुमिरन के द्वारा हमारा ख़याल उलटकर श्राँखों की तरफ इकट्ठा होता है तो मन उस जगह टिकता श्रौर ठहरता नहीं है, क्योंकि उसे बार बार नौ द्वारों के ज़रिये बाहर दौड़ने की श्रादत पड़ी हुई है। श्रँधेरे श्रौर शून्य में मन को खड़ा करना बड़ा मुश्किल हो जाता है। जब तक हम मन को किसी के स्वरूप के ध्यान का श्राधार नहीं देते तब तक उसे वहाँ ठहराने वाली कोई चीज नहीं मिलती श्रौर हमारे ख़याल

के लिये वहाँ ठहरना बहुत मुश्किल हो जाता है। इसलिये महात्मा समझाते हैं कि मन को वहाँ खड़ा करने के लिये किसी न किसी के स्वरूप के ध्यान का आधार देना बड़ा ज़रूरी है।

ध्यान किसके स्वरूप का करना चाहिये? यह बड़ी सोच और विचार करने योग्य बात है, क्योंकि जिसके भी स्वरूप का ध्यान करेंगे, स्वाभाविक ही हमारा उसके साथ मोह और प्यार पैदा हो जायेगा और जहाँ वह जायेगा, हम भी उसके मोह और प्यार में बँधे हुए वहीं जायेंगे। इस बात पर विचार और ग़ौर करने के लिये हम सारी दुनिया को अपनी आँखों के आगे रखकर अच्छी तरह परख कर सोचते हैं कि कौनसी चीज़ हमारे ध्यान के योग्य हो सकती है। जितनी भी दुनिया की चीज़ें बनी हुई हैं यह सब पाँच तत्वों की बनी हुई हैं। हरएक चीज़ के अन्दर कोई न कोई तत्व मौजूद है। मनुष्य के अन्दर पाँचों तत्व मौजूद हैं, इसलिये महात्मा हमें रचना का सिरमौर या अशरफ़-उल-मख़्लूकात और पाँच तत्वों का पुतला कहते हैं।

तत्वों की दृष्टि से हम रचना को पाँच श्रेणियों में बाँट सकते हैं। पहली श्रेणी वह है जिसमें पानी का तत्व प्रधान है। इसमें फल, फूल, सब्जी और पेड़-पौधे आते हैं। अगर हम पाँच तत्वों के पुतले होकर पेड़ों, पौधों आदि का ध्यान करेंगे तो हम उन्नति नहीं कर सकते, क्योंकि उनका ध्यान हमें उन्हीं के जामे में यानी पेड़ों, पौधों आदि के जामे में ले जायेगा। अतएव, पूरा वनस्पति जगत हमारे ध्यान के योग्य नहीं है। दूसरी श्रेणी कीड़े-मकोड़े, साँप, बिच्छू वगैरह की है जिनके अन्दर दो तत्व--पृथ्वी और अग्नि--मौजूद हैं। ये भी हमारे ध्यान के काबिल नहीं हो सकते। तीसरी श्रेणी पक्षियों की है जिनमें तीन तत्व हैं, हवा, पानी और अग्नि। अगर हम पाँच तत्वों वाले मनुष्य होकर गरुड, मोर, चिड़ियों आदि का ध्यान करेंगे तो हम इन पक्षियों के जामे में आ जायेंगे। हमारा उद्देश्य तो मनुष्य के जामे से भी ऊपर जाने का है। इसलिये यह श्रेणी भी हमारे ध्यान के योग्य नहीं है। चौथी श्रेणी चौपायों, जानवरों की है, जिनमें बुद्धि

या आकाश नहीं है, बाकी चार तत्व मौजूद हैं । अतएव गाय, बैल, घोड़े वगैरह भी हमारे ध्यान के क़ाबिल नहीं । पाँचवीं श्रेणी खुद मनुष्य की है और हर मनुष्य में पाँचों ही तत्व मौजूद हैं । इसलिये स्वाभाविक तौर पर मन में यह विचार आता है कि मनुष्य मनुष्य का ध्यान धरे तो क्यों धरे ? खासकर आजकल के जमाने में, जब हमारे सबके अधिकार समान हैं ।

अब मनुष्य मनुष्य का ध्यान नहीं धरता, देवी-देवता किसी ने आज तक देखे नहीं और मालिक के स्वरूप का पता नहीं । यहाँ आकर बहुत से लोग खुदा की हस्ती को ही अस्वीकार कर बैठते हैं । और बाकी सब भी इस उलझन में फँस जाते हैं कि अब कौनसी चीज़ हमारे ध्यान के योग्य हो सकती है । महात्मा एक बहुत अच्छी मिसाल देकर समझाते हैं कि अगर एक कमरे में बहुत से रेडियो रख दें, जिनका सम्बन्ध किसी बैटरी या बिजली से न हो तो हम कभी किसी देश की खबरें नहीं सुन सकते । लेकिन उनका सम्बन्ध अगर किसी बैटरी या बिजली से हो जाए तो हम जिस देश की चाहें खबरें सुन सकते हैं । इसी प्रकार हमें उन मालिक के भक्तों और प्यारों की खोज करनी है जिनका सम्बन्ध या तार उसके साथ जुड़ा हुआ है । वे अपनी भक्ति और प्यार के बँधे हुए वापस जाकर उसी परमात्मा से मिल जाते हैं, इसलिये हम भी उनके स्वरूप का ध्यान करके, उनके साथ प्यार लगाकर वापस जाकर उसी परमात्मा के अन्दर समा जायेंगे । गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"गुरु की मूरत मन में धिआन ।"

और

"अकाल मूरत है साध संतन की, ठाहर नीकी धिआन को ।।"

अर्थात् सत्गुरु के तसव्वुर या ध्यान को हमेशा मन म रखो । यही स्वामीजी महाराज का भी उपदेश है—

"गुरु का ध्यान कर प्यारे । विना इसके नहीं छुटना ।"

ईसा मसीह भी इसी ओर इशारा करते हैं जब वे कहते हैं कि मैंने उस परमात्मा को देखा है, तुमने मुझे देखा है, इसलिये तुमने भी उस परमात्मा को देखा है, "और जो मुझे देखता है वह मेरे भेजनेवाले को देखता है।" (जॉन १२:२५)

तात्पर्य यही है कि सत्गुरु के स्वरूप के ध्यान के द्वारा ही हम वापस जाकर उस परमात्मा में समायेंगे। ध्यान के द्वारा हमारे ख़याल को आँखों के पीछे ठहरने की आदत पड़ जाती है। ध्यान हमें अपने सतगुरु का करना है जिन्होंने मालिक की भक्ति का तरीका और रास्ता हमें बताया है।

जब ध्यान के द्वारा हमारा ख़याल एकाग्र हो जाता है तब हमें अपने आप पता लग जाता है कि आँखों के पीछे एक बहुत मीठी और सुरीली आवाज़ आ रही है। यह आवाज़ मालिक की दरगाह से उठ रही है और यह हरएक मनुष्य के अन्दर है। यहाँ किसी कौम, मज़हब या मुल्क का सवाल नहीं है, चाहे हम हिन्दू होकर अन्दर जायें या सिक्ख, मुसलमान या ईसाई धर्म में होकर जायें। जो भी भाग्यशाली अपने ख़याल को आँखों के पीछे एकाग्र करता है, उसका ख़याल उस आवाज़ के साथ जुड़ जाता है। इस अमल या क्रिया को महात्मा जीते जी मरना कहते हैं, क्योंकि ख़याल को आँखों के पीछे एकाग्र करके उस मीठी और सुरीली आवाज़ को सुनने से आत्मा और मन नौ द्वारों से आज़ाद हो जाते हैं और इनका सम्बन्ध इस दुनिया से बिलकुल टूट जाता है। दुनिया के सब दुःख भूलकर मनुष्य अपने अन्दर शब्द की स्थायी खुशी का अनुभव करने लगता है। कबीर साहिब इस बारे में लिखते हैं,—"जिस मरने से जग डरे, मेरे मन आनन्द।" गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"नानक जीवतिआँ मर रहिए। ऐसा जोग कमाइए॥"

बाइबिल में सेण्ट पॉल भी कहते हैं, "मैं प्रति दिन मरता हूँ।"

अहले इस्लाम की हदीस भी कहती है, "मौतूआ कबलन्ता मौतू" अर्थात् मौत से पहले मरो।

दादू साहिब जो कि एक प्रसिद्ध महात्मा हुए हैं अपनी वाणी में लिखते हैं—

"जीवत माटी हो रहो, साईं सनमुख होय ।
दादू पहले मर रहो, पीछे मरे सब कोय ।।"

तीसरी पातशाही गुरु अमरदासजी फरमाते हैं—

"सतगुरु सेवे ताँ मल जाए ।
जीवत मरे हरि सिश्रों चित लाए ।।

दरिया साहब फ़रमाते हैं—

"दरिया गुरु गरवा मिला, करम किया सब रद्द ।
झूठा भरम छुड़ाय कर, पकड़ाया सत शब्द ।।"

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं—

"मिटे अन्धेरा अज्ञानता भाई, कमल होवे परगास ।
गुरु बचन सुख ऊपजे भाई, सब फल सतिगुर पास ।।"

उस मीठी और सुरीली आवाज़ को ही, जो कि आँखों के पीछे आ रही है, महात्मा शब्द या नाम कहकर पुकारते हैं । ये जितने भी हमारे मज़हब हैं, सबके रीति-रिवाज़ या शरीयत अलग-अलग हैं, परन्तु जो वास्तविक आध्यात्मिकता है, असलियत है, हक़ीक़त है, रूहानियत की बुनियाद और सच्चाई का मूल है, वह हर धर्म या मज़-हब की तह में एक ही है । उस रूहानियत को भिन्न-भिन्न महात्माओं ने भिन्न-भिन्न लफ्ज़ों के द्वारा समझाने की कोशिश की है, लेकिन मतलब सबका उसी रूहानियत से है, उसी नाम या शब्द से है जो हरएक मनुष्य के अन्दर मौजूद है । हमें बाहरी लफ्ज़ों की भिन्नता में नहीं उलझना चाहिये । हमें तो अपने शरीर के अन्दर उस केन्द्र पर अपने ख़याल को एकाग्र करना है, जहाँ वह शब्द दिन-रात धुनकारें दे रहा है । गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"नौ दर ठाके धावत रहाए, दसवें निज घर वासा पाए ।।
ओथे अनहद सबद वजे दिन राती, गुर मती सवद सुनावणिआ ।।"

अर्थात् जब हम अपने शरीर के नौ द्वारों से ख़याल को निकालकर आँखों के पीछे एकाग्र करते हैं तो हम अपने असली घर के दरवाज़े पर आ जाते हैं। हमारा असली घर सचखंड है जहाँ परमात्मा का निवास है। उसका दरवाज़ा आँखों के पीछे तीसरा तिल है। घर के उस दरवाज़े की निशानी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि उस जगह अनहद शब्द दिन-रात धुनकारें दे रहा है। जब तक उस घर के दरवाज़े पर ख़याल को इकट्ठा करके शब्द को नहीं पकड़ते, तब तक हमारा मुक्ति प्राप्त करने का सवाल ही पैदा नहीं होता। हजरत ईसा भी इसी ओर इशारा करते हैं जब वे कहते हैं, "ढूँढो और तुम्हें मिलेगा, खटखटाओ और वह तुम्हारे लिये खोला जायेगा।" (मैथ्यू ७:७.)

आन्तरिक मार्ग

अगर हमें अपने घर के अन्दर जाना है तो सबसे पहले घर के दरवाज़े की तलाश करनी पड़ती है। निज-घर का वह दरवाज़ा आँखों के पीछे तीसरी आँख, एक आँख या तीसरा तिल है। उसी को खोलने के लिये हम उसको खटखटाते हैं अर्थात् बार-बार सुमिरन और ध्यान के द्वारा अपने फैले हुए ख़याल को आँखों के पीछे उलटकर इकट्ठा करते हैं। जब बार-बार खटखटाने से अर्थात् सुमिरन और ध्यान से हमारा ख़याल इकट्ठा हो जाता है, तब उस घर का दरवाज़ा खुल जाता है। फिर हमें घर जाने का रास्ता मिलता है। जब हम अपने ख़याल को वहाँ जाकर शब्द के साथ जोड़ते हैं तो वह शब्द का मार्ग खुल जाता है। उसके द्वारा हम वापिस जाकर परमात्मा को पा सकते हैं। तुलसी साहिब समझाते हैं—

"कुदरती काबे की तू महराब में सुन गौर से,
आ रही धुर से सदा तेरे बुलाने के लिये॥"

मुसलमानों का ख़याल है कि हज अथवा काबे की यात्रा करने से हम मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। तुलसी साहिब फरमाते हैं कि जो असली काबा है वह हमारा शरीर है। पैरों के तलवों से हमारा हज शुरू होता है और सिर की चोटी पर जाकर ख़त्म होता है। इस हज

की दो मंजिलें हैं। एक आँखों तक और दूसरी आँखों से ऊपर। मौलवी हमेशा मेहराव के अन्दर खड़ा होकर बाँग देता है। हमारे माथे की वनावट भी मेहराव की तरह है। जो मालिक की दरगाह की ओर से कुदरती कलमा आ रहा है, वह इस मेहराव यानी माथे के अन्दर आ रहा है। जव हम उस आवाज़ या कलमे को पकड़ते हैं, तो हम उसके पीछे-पीछे चलकर अपनी मंज़िले-मक्सूद पर पहुँच जाते हैं। गुरु अमरदासजी फरमाते हैं—

"इस काइआ अंदर बसतु अनेका, गुरमुख साच मिले ताँ वखाँ ।।
नौ दरवाज़े दसवें मुकता, अनहद सवद वजावणिआँ ।।"

हमारा यह शरीर सिर्फ हड्डियों और माँस का ही नहीं वना हुआ है और न सिर्फ पाँच छः फुट लम्वा मिट्टी का पुतला ही है। परमात्मा ने इसके अन्दर अनगिनत सामान अर्थात् खजाने रखे हैं। बल्कि वह परमात्मा खुद भी इसके अन्दर बैठा हुआ है। जब तक कोई सच्चा सतगुरु नहीं मिलता तव तक हम शरीर में उस परमात्मा को देखने और अन्दर खोज करने के तरीके का पता नहीं लगा सकते। आप समझाते हैं कि शरीर के दो हिस्से हैं, एक आँखों से नीचे और दूसरा आँखों से ऊपर। आँखों के नीचे नौ द्वारों में सिर्फ इन्द्रियों के भोग और विषयों-विकारों के स्वाद हैं। जव तक हमारा खयाल आँखों से नीचे नीचे है, हम मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि मुक्ति का दरवाज़ा आँखों के पीछे है। उसकी यही पहचान है कि उस जगह अनहद शब्द धुनकारें दे रहा है। गुरु नानक साहिव फरमाते हैं—

"गुरु सवद मिल से विछड़े नाहीं, सहजे सच समावणिआं ।।"

जव हम सतगुरु के जरिये शब्द को पकड़ लेते हैं तव शब्द फिर हमें छोड़ता नहीं, अपने साथ लेकर परमात्मा में ही समा जाता है। हमको उस शब्द के ज़रिये अपने अन्दर अपने घर का रुख या दिशा स्थिर करना है और शब्द के प्रकाश के द्वारा अपने घर का रास्ता देखना है। हमारी आत्मा की जो देखने की शक्ति है उसे महात्मा निरत कहते हैं और जो सुनने की शक्ति है उसे सुरत कहते हैं। सुरत के

द्वारा शब्द की आवाज़ को सुनना है और निरत के द्वारा उसके प्रकाश को देखना है। उदाहरण के तौर पर, अगर हम अपने घर से शाम को सैर करते हुए कहीं दूर निकल जाते हैं, रात का अँधेरा सिर पर छा जाता है, हाथ को हाथ नहीं सूझता, अपने घर के रास्ते का कुछ पता नहीं लगता और न घर की दिशा का ही कुछ अन्दाज़ रहता है, तब हम वापस अपने घर पहुँचने के लिये उस अँधेरे में चुपचाप खड़े होकर बड़े गौर से किसी न किसी आवाज़ को सुनने की कोशिश करते हैं जोकि हमारे घर की ओर से आ रही हो। कहीं रेडियो की आवाज़ हो या कोई कुत्ता भौंकता हो या ऐसी ही और कोई आवाज़ आती हुई सुनाई दे, तो हम उस आवाज़ को सुनकर अपने घर की दिशा स्थिर कर लेते हैं कि हमारा घर आगे की तरफ है या पीछे की ओर है अथवा दाईं या बाईं तरफ है। दिशा का पता लग जाने पर भी रास्ते में अँधेरा है, ऊँची-नीची ज़मीन है, पानी या झाड़ियाँ वगैरह हैं, इसलिये अगर हमारे हाथ में कोई टार्च या लालटेन हो तो हम उसके प्रकाश के द्वारा ऊँची-नीची ज़मीन देखते हुए, काँटों, झाड़ियों वगैरह से बचते हुए अपना रास्ता ढूँढकर सही-सलामत वापस अपने घर पहुँच जाते हैं। इसी प्रकार, महात्मा उपदेश देते हैं कि हमारे हरएक के अन्दर परमात्मा ने हमारे लिये वह आवाज़ भी रखी है और वह रोशनी भी रखी है। हमें उस आवाज़ को सुनकर अपने घर की दिशा स्थिर करनी है और रोशनी के द्वारा अपना रूहानी सफर तय करना है। कबीर साहिब भी उसकी ओर इशारा करते हैं—"दीवा बले अगम का, बिन बाती बिन तेल"। वह अगम की जोत हमारे सबके अन्दर बैगर बत्ती और तेल के जल रही है। पलटू साहिब भी अपना यही अनुभव समझाते हैं—

"उलटा कूआँ गगन में तिसमें जरै चिराग
तिसमें जरै चिराग बिना रोगन बिन बाती।
छः रुत बारह मास रहत जरता दिन राती॥"

हमारे सिर के ऊपर के हिस्से का आप उलटा कुआँ कह कर वर्णन

करते हैं। कुएँ का मुँह ऊपर और पैंदा नीचे होता है। हमारे सिर का पैंदा ऊपर और मुँह नीचे की ओर है अर्थात् उसकी बनावट कुएँ से उलटी है। आप फरमाते हैं कि जब हम नौ द्वारों से ख़याल को निकाल कर आँखों के पीछे इकट्ठा करेंगे तो हम उस उलटे कुएँ के अन्दर आ जायेंगे। उस जगह हरएक के अन्दर एक जोत जल रही है। उस जोत को जलने के लिये न तो किसी बत्ती की ज़रूरत है और न ही किसी तेल की। बाहर हम जितनी जोतें जलाते हैं उनको बत्ती और तेल की ज़रूरत होती है। अगर बत्ती खत्म हो जाये या तेल समाप्त हो जाये तो वे बुझ जाती हैं। परन्तु जिस जोत का पलटू साहिब वर्णन करते हैं वह जोत चौबीस घण्टे हमारे सबके अन्दर जल रही है। छहों ऋतु, बारहों महीने और दिन-रात यह जोत हर वक्त हर मनुष्य के अन्दर जलती रहती है। यही स्वामीजी महाराज फरमाते हैं—

"बसो तुम आय नैनन में, सिमट कर एक यहाँ होना।
दुई यहाँ दूर हो जाये, दृष्टि जोत में धरना ॥"

जिस समय हम नौ द्वारों से ख़याल को निकाल कर आँखों के पीछे एकाग्र करते हैं, तो हम द्वैत से एकता में आ जाते हैं। जब तक हमारी तवज्जह या हमारा ध्यान दोनों आँखों के द्वारा बाहर की ओर फैल रहा है, हम द्वैत में बैठे हैं। जब ख़याल को समेटकर आँखों के पीछे इकट्ठा करते हैं, तो एकता में आ जाते हैं। फिर हमें इस केन्द्र पर उस जोत के दर्शन होते हैं। हजरत ईसा ने बाइबिल में इसी का ज़िक्र किया है, "शरीर की ज्योति आँख है। इसलिये अगर तेरी आँख एक हो जाये तो तेरा सारा शरीर प्रकाश से भर जायेगा" (मेथ्यू ६:२२)। कि अगर तुम एक आँख वाले हो जाओगे अर्थात् दोनों आँखों के पीछे ख़याल को इकट्ठा कर लोगे, तो तुम्हारा सारा शरीर नूर और प्रकाश से भर जायेगा। गुरु नानक साहिब भी यही उपदेश देते हैं—

"अंतर जोत निरंतर बानी सच्चे साहब सिओं लिव लाई ॥"

हरएक मनुष्य के अन्दर वह जोत जल रही है। उस जोत के अन्दर से एक बहुत मीठी और सुरीली आवाज़ निकल रही है। जो उस जोत के दर्शन करते हैं और उस वाणी की सुरीली आवाज़ को सुनते हैं, उनका दुनिया से मोह व प्यार उठ जाता है और मालिक से प्यार पैदा हो जाता है। हम सबको मालूम है कि जितने हमारे धार्मिक स्थान हैं, क्या गुरुद्वारा, क्या मस्जिद, क्या मन्दिर, क्या गिरजा, सब के अन्दर हम जोत जलाते हैं और घण्टे और शंख जैसी आवाज़ पैदा करते हैं। किसी गिरजे में चले जायें, वहाँ मोमबत्तियाँ जलाई जाती हैं और सबसे ऊपर घण्टा लटका रहता है जो प्रार्थना आदि शुरू होने से पहले बजाया जाता है। इसी तरह बौद्ध मन्दिरों में भी हमेशा जोत जलती रहती है, जिसे वे अखंड जोत कहते हैं और जिसे कभी बुझने नहीं देते। लेकिन जिस अखंड जोत का उल्लेख महात्मा बुद्ध ने किया है वह तो हमारे सबके अन्दर है। उनके मन्दिरों में बिगुल वगैरह भी बजाये जाते हैं। जैनियों और हिन्दुओं के मन्दिरों में भी जोत जलाई जाती है और घण्टे बजाये जाते हैं। इसी तरह गुरुद्वारों में भी जोत जलाई जाती है और शंख वगैरह बजाये जाते हैं। मुसलमान भी मज़ारों पर रात को चिराग़ जलाते हैं। मौलवी ऊँची ऊँची आवाज़ से बाँग देता है या नक्कारा बजाता है। हमने कभी भी यह विचार नहीं किया होगा कि हरएक धार्मिक स्थान पर जोत क्यों जलाई जाती है, घण्टा क्यों बजाया जाता है? असल में ऋषियों-मुनियों, सन्तों-महात्माओं, पीरों-पैग़म्बरों ने समझाया था कि हमारा शरीर ही सबसे बड़ा और असली गुरुद्वारा, मन्दिर, मस्जिद या गिरजा है और इस शरीर के अन्दर जोत जल रही है और शब्द की आवाज़ (जो शुरू-शुरू में घण्टे और शंख जैसी है) हो रही है। लेकिन हम दुनिया के जीव ऐसे मालिक के भक्तों के जाने के बाद उनकी असली शिक्षा को भूल गये और बाहरमुखी हो गये।

अन्दर उस शब्द की आवाज़ को सुनकर और प्रकाश को देखकर हमारा मन बिंध जाता है, वश में आ जाता है और वापस अपने ठिकाने पहुँच जाता है। आत्मा और मन की गाँठ खुल जाती है। **गुरु अमरदास**

साहिब समझाते हैं—

"गुरु गिआन अंजन सच नेत्री पाइआ ।
अन्तर चानन अगिआन अन्धेर गवाँइआ ।।
जोती जोत मिली मन मानीआ ।
हर दर सोभा पावणिआँ ।।"

जब सतगुरु के ज्ञान और अनुभव के अनुसार हम आँखों में शब्द रूपी सुरमा डालते हैं तो अज्ञानता का अँधेरा हमारे रास्ते से दूर हो जाता है तथा परमात्मा का नूर और प्रकाश नज़र आना शुरू हो जाता है। हिन्दुस्तान में यह आम रिवाज़ है कि किसी को दिखाई कम देता है तो उसे सुरमे का प्रयोग करने की सलाह दी जाती है। आम धारणा है कि सुरमा डालने से नज़र फिर ठीक हो जाती है और अच्छी तरह दिखाई देना शुरू हो जाता है। गुरु अमरदासजी यह मिसाल देकर समझाते हैं कि हम दुनिया के जीव आँखों के होते हुए भी अन्धे हुए बैठे हैं, हमें अपने अन्दर कुछ भी नज़र नहीं आता, अगर हम शब्द के सुरमे का प्रयोग करेंगे अर्थात् अपने ख़याल को अन्दर समेटकर शब्द के साथ जोड़ेंगे, तो हमारा अज्ञानता का अँधेरा दूर हो सकेगा और हमें अपने अन्दर प्रकाश दिखाई दे सकेगा, जिसे देखकर हमारा मन मान जायेगा अर्थात् वश में आ जायेगा। यह मन जो इन्द्रियों के भोगों का गुलाम बना बैठा है उस प्रकाश में लीन हो जायेगा और हर समय शब्द की आवाज़ को सुनकर व पकड़कर ब्रह्म अथवा त्रिकुटी में अपने ठिकाने पर पहुँच जायेगा। तब कहीं हमारी आत्मा मन के पंजे से आज़ाद होती है और तब जाकर हमारी 'जोती' (आत्मा) उस 'जोत' (परमात्मा) में मिलती है और मालिक की दरगाह में जाकर असली इज्ज़त और शोभा प्राप्त करती है। हज़रत ईसा भी बाइबिल में कहते हैं, "मैं इस जगत में न्याय के लिये आया ताकि जो नहीं देखते वे देखें और जो देखते हैं वे अन्धे हो जावें।" (जॉन ९:३९)। अर्थात् मैं इस दुनिया में इसलिये आया हूँ कि जो लोग आँखें होने के बावजूद अन्धे हैं और उस मालिक को नहीं देखते, मैं उनको इस दुनिया की शक्लों और पदार्थों की ओर से अन्धा कर दूँ

ग्रौर मालिक की ग्रोर से ग्राँखोंवाला ग्रथवा सुजाखा कर दूँ । गुरु ग्रमरदास साहिव यही समझाते हैं—

"जिन ग्रन्तर शवद ग्राप पछानहि गति मिति तिनही पाई ।।"

जो ग्रन्दर उस शव्द को पकड़कर ग्रपने ग्रापको पहचानने के योग्य वनते हैं ग्रसली गति ग्रौर मालिक से मिलने का रास्ता उन्हीं को प्राप्त होता है । फिर ग्राप उपदेश करते हैं—

"सवदै जाने, ताँ ग्राप पछाने ।।"

कि शव्द ग्रौर नाम की लज्ज़त प्राप्त करके ही हम ग्रपने ग्रापको पहचानने के काविल वनते हैं । हम ग्रपने ग्रापको तव पहचानते हैं जव हमारी ग्रात्मा के ऊपर से सव गन्दे-गन्दे गिलाफ या ग्रावरण उतर जाते हैं । इसलिये महात्मा हमें मुक्ति प्राप्त करने का सिर्फ यही साधन समझाते हैं कि हम ग्रपने ख्याल को ग्रन्दर शव्द या नाम के साथ जोड़ें । गुरु नानक साहिव एक ग्रौर स्थान पर फरमाते हैं—

"शवद मरे सो मर रहे फिर मरे न दूजी वार ।।"

स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"नाम के रंग में रंग जा, मिले तोहि धाम निज ग्रपना ।।"

ग्रन्थों-पोथियों, वेदों-शास्त्रों में महात्मा उस नाम या शव्द की महिमा लिखते हैं । उनको पढ़ने से हमें समझ ग्रा जाती है कि हमें नाम की कमाई क्यों करनी है ग्रौर किस तरह करनी है । लेकिन ग्रन्थों-पोथियों में वह नाम नहीं है, सिर्फ नाम को प्राप्त करने का तरीका है । उनके पढ़ने में मुक्ति नहीं है, जो पढ़ते हैं उस पर ग्रमल करने में मुक्ति है । जिस तरह डॉक्टर की किताबों में नुस्खे या वीमारियों का इलाज करने के तरीके लिखे हुए हैं, लेकिन किताबों में दवाइयाँ नहीं हैं । कोई वीमार सारा दिन डॉक्टरी की किताव पढ़कर ही स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकता । वल्कि, जो कुछ उस किताव में लिखा है उसके ग्रनुसार दवा का उपयोग करके ही ठीक हो सकता है । दवा ग्रपने ग्राप में कोई ग्रौर चीज़ है ग्रौर किताबों में दवा का

ज़िक्र कुछ और है । इसी प्रकार अगर कोई सारा दिन खाना बनाने की किताबें पढ़ता रहे जिनमें तरह तरह के पकवान बनाने के तरीके लिखे हुए हैं तो उनको पढ़ने से उसे न तो खाने का स्वाद आ सकता है और न पेट ही भर सकता है । जब वह किताब के अनुसार खाना बनाकर खा लेता है तो पेट भी भर जाता है और स्वाद भी आ जाता है । इसी प्रकार अगर किसी को रेल से सफर करना है तो पहले टाइम-टेबल या मार्ग-दर्शिका को अच्छी तरह पढ़ा जाता है । उससे पता चलता है कि रेल की यात्रा कितनी लम्बी है, कौन-कौन से स्टेशन रास्ते में आयेंगे, कितना किराया लगेगा और कितने बजे गाड़ी स्टेशन से रवाना होगी । परन्तु उस टाइम-टेबल को सिर्फ पढ़ने से ही हम अपनी मंज़िले-मक्सूद पर नहीं पहुँच जाते । जब स्टेशन पर जाकर, टाइम-टेबल के अनुसार टिकिट लेकर गाड़ी पर सवार हो जाते हैं, तभी हम मंज़िले-मक्सूद पर पहुँचने के अधिकारी बनते हैं । इस नुक्ते और स्थान पर आकर आज आम दुनिया भूली बैठी है । हम अपने ग्रन्थों-पोथियों, वेदों और शास्त्रों के पढ़ने-पढ़ाने को ही मुक्ति का साधन समझे बैठे हैं । और अक्सर तो हम खुद भी नहीं पढ़ते, बल्कि कोई पण्डित या ग्यानी हमारे घर में पढ़ता रहता है और हम दुनिया के काम-काज में डूबे रहते हैं और मन में समझ लेते हैं कि न मालूम हम कितना फायदा उठा रहे हैं । अगर खुद बैठकर पढ़ें या सुनें तो उन महात्माओं के वचन हमारे कानों में पड़ें, हमें अपनी कमज़ोरियों और कमियों का पता लगे और फिर उनको दूर करने का मन में शौक़ पैदा हो, तरीके और साधन का पता लगे, तब तो उस पढ़ने-पढ़ाने का भी फायदा हो । हमने तो उसे सिर्फ एक रस्म-रिवाज या परिपाटी बनाया हुआ है कि शायद उस पण्डित के पढ़ने से ही हम मुक्ति प्राप्त कर लें । महात्मा हमारे खयालों को इन भ्रमों में से निकालते हैं । स्वामीजी महाराज फरमाते हैं—

"वेद शास्त्र सिमृत और पुराणा । पढ़ पढ़ सब पंडित हारा ।।
बिन सतगुरु और बिन शब्द सुरत । कोई न उतरे भौ पारा ।।"

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब उपदेश देते हैं—

"पड़ीग्रहि जेते वरस वरस, पड़ीग्रहि जेते मास ।।
पड़ीऐ जेती ग्रारजा, पड़ीग्रहि जेते सास ।।
नानक लेखै इक गल होरु हौमै झखणा झाख ।।"

चाहे हम सब दिन पढ़ते रहें, सारे महीने, सारे साल पढ़ते रहें, सारी जिन्दगी ग्रौर साँस-साँस पढ़ते रहें तो भी सिर्फ एक ही चीज हमारे हिसाब में लिखी जायेगी कि क्या हमारी सुरत ग्रथवा ग्रात्मा उस शब्द या नाम को पकड़ती है ? ग्रगर नहीं, तो हमारा सब पढ़ना-पढ़ाना फिज़ूल है । यही तुलसी साहिब ग्रपनी वाणी में लिखते हैं—

"चार ग्रठारह नौ पढ़े, खट पढ़ खोया मूल ।
सुरत शवद चीन्हें विना, ज्यों पंछी चण्डूल ।।"

चाहे कोई चारों वेद, ग्रठारहों पुराण, नौ व्याकरण ग्रौर छः शास्त्र भी पढ़ ले, लेकिन ग्रगर उसने शब्द-सुरत का ज्ञान प्राप्त नहीं किया तो उसकी हालत चण्डूल पक्षी के जैसी है, जिसके लिये कहा जाता है कि जैसी बोली वह सुनता है उसी की नकल कर लेता है । कबीर साहिब का कथन है—

"पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुग्रा, पंडित भया न कोय ।
ढाई ग्रच्छर प्रेम के, पढ़ै सो पंडित होय ।।"

बुल्ले शाह भी यही उपदेश देते हैं—

"इलमों वस करीं ग्रो यार, इक्को ग्रलफ़ तेरे दरकार ।
वहुता इल्म इज़राईल[१] ने पढ़िग्रा, झुगा झाहा उसदा सड़िग्रा ।"

वाइविल में हज़रत ईसा भी यही कहते हैं, "हे पिता ! लोक परलोक के स्वामी ! मैं तेरा शुक्रिया करता हूँ कि तूने इन वातों को ज्ञानियों ग्रौर बुद्धिमानों से छिपा कर रखा ग्रौर वालकों पर प्रकट किया है ।" (मेथ्यू ११:२५) ग्रापके कहने का तात्पर्य है कि हे मालिक ! तूने इस गूढ़ रहस्य को सांसारिक ग्रौर तर्क बुद्धि वाले लोगों से परे रखा है ग्रौर केवल उन्हीं पर प्रकट किया है जो वच्चों के समान सरल

और निष्कपट हैं।

हम ग्रन्थों-पोथियों, वेदों-शास्त्रों को पढ़कर वाचक ज्ञानी बन जाते हैं। वाद-विवाद करने की आदत पैदा हो जाती है। अपने आपको बड़े गुणी-ज्ञानी, आलिम-फाज़िल समझना शुरू कर देते हैं और दूसरों को नासमझ व अज्ञानी मानने लग जाते हैं। मन में हौमैं, घमंड और अहंकार आ जाता है, जबकि मालिक की भक्ति के मार्ग पर तो पढ़-लिखकर भी बच्चों के समान सरल बनना पड़ता है। ग्रन्थ-पोथियाँ और वेद-शास्त्र क्या हैं? गुरु साहिबानों, ऋषियों-मुनियों, पीरों-पैगम्बरों ने मेहनत की और मालिक से मिलाप किया। जो कुछ नज़ारे उन्होंने अन्दर देखे और जो रुकावटें उन्होंने अन्दर महसूस की और देखीं, उन्होंने हमारे फायदे के लिये इन धर्म-पुस्तकों में उनका वर्णन कर दिया। ये पवित्र पुस्तकें उन महात्माओं के निजी अनुभवों का रेकार्ड या लेखा है। हमें उनके पढ़ने से वे अनुभव नहीं हो सकते, जब तक, जो कुछ हम पढ़ते हैं, उसके अनुसार अपने अन्दर खोज और जाँच-पड़ताल नहीं करते। यह खोज और तहकीकात करने का तरीका सिर्फ शब्द या नाम की कमाई है। वह नाम कहीं बाहर नहीं है, हमारे सबके शरीर के अन्दर है और हमारे लिये ही परमात्मा ने हमारे अन्दर रखा है। लेकिन उसकी खोज किस तरह करनी है, इसके भेद या तरीके का हमें सन्तों से ही पता लगता है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

> "अनहद बानी पूँजी, संतन हथ राखी कुंजी ॥"

गुरु अमरदासजी का कथन है—

> "सतगुरु हथ कुंजी होर तों दर खुलै नाहीं,
> गुरु पूरे भाग मिलावणिआँ ॥"

संतों की संगति

जिस परमात्मा ने हमें पैदा किया है, उसने हमारे लिये नाम की दौलत हमारे अन्दर रख कर उसका भेद सन्तों के हवाले कर दिया है।

इसलिए उसे प्राप्त करने के लिए हमें सन्तों-महात्माओं की संगति करनी पड़ती है ।

"जिनका गृह तिन दीआ ताला, कुंजी गुरु सौंपाई ।।
अनेक उपाव करे नहि पावे, विन सतिगुरु सरनाई ।।"

गुरु अमरदासजी लिखते हैं--

"विन गुरु दाते कोई न पाये, लख कोटी जे करम कमाए ।।"

पांचवी पातशाही गुरु अर्जुनदेवजी का कथन है—

"कहु नानक प्रभु इहो जनाई । विन गुरु मुकत न पाए भाई।।"

गुरु नानक साहिब फिर फरमाते हैं--

"सतगुरु सेवे सदा सुख पाए ।।
सतगुरु अलख दिया लखाए ।।"

और--

"मत को भरम भुले संसार । गुरु विन कोई न उतरस पार ।।"

गुरु रामदासजी फरमाते हैं--

"संतो सुनो सुनो जन भाई गुरु काढ़ी वाँह कुकीजै ।
जे आतम को सुख सुख नित लोढ़हु, ताँ सतगुरु शरन पवीजै ।।"

महात्मा सतगुरु की संगति व सोहवत पर बहुत ही जोर देते है कि उनके वगैर हमारा मुक्ति प्राप्त करने का कोई सवाल ही पैदा नहीं होता । गुरु अर्जुनदेवजी फिर कहते हैं--

"सासत वेद सिमृत सव सोधे, सव एका बात पुकारी ।।
विन गुरु भुकति न कोई पावे, मन देखो कर विचारी ।।"
"विन सतगुरु कोऊ नाम न पाए, प्रभु ऐसी वणत वनाई हे ।।"

मालिक ने अपने मिलने का यही कुदरती कानून रखा है । जब भी वह मिलना है, सन्तों-महात्माओं के ज़रिए ही मिलता है । हज़रत ईसा भी वाइविल में यही कहते हैं, "हे सव मेहनत करने वालों और बोझ से दवे हुए लोगों ! मेरे पास आओ, मैं तुम्हें चैन प्रदान करूँगा ।"

(मेथ्यू ११:२८) अर्थात् ऐ दुनिया वालों, तुम जो गुनाहों के बोझ से लदे और थके हुए हो, मेरे पास आओ, मैं तुमको आराम और शान्ति दूंगा। आगे फिर कहते हैं—

"मैं ही मार्ग, हकीकत और जीवन हूँ। बिना मेरे ज़रिए कोई भी पिता के पास नहीं पहुँच सकता। अगर तुमने मुझे पहचाना होता तो मेरे पिता को भी पहचान लेते; पर अब से तुम उसे जानते हो और तुमने उसे देखा भी है।" (जॉन १४:६, ७)

अर्थात् तुम अपने पिता से सिर्फ मेरे ही द्वारा मिल सकते हो। मैं ही उससे मिलाने का साधन और रास्ता हूँ। अगर तुमने मुझे पहचान लिया है तो तुमने उस परमात्मा को पहचान लिया और देख लिया है। आगे फिर कहते हैं, "और जो मुझे देखता है वह मेरे भेजने वाले को देखता है" (जॉन १२:४५) अर्थात् मैंने उस परमात्मा को देखा है, तुमने मुझे देखा है, इसलिए तुमने भी उस परमात्मा को देखा है। इसी प्रकार एक और जगह कहते हैं, "जगत की ज्योति मैं हूँ; जो मेरे पीछे चलेगा वह अँधेरे में नहीं चलेगा, बल्कि जीवन की ज्योति पा जाएगा" (जॉन ८:१२)। तुलसी साहिब भी यही उपदेश देते हैं—

"तुलसी या संसार में, पाँच रतन हैं सार।
साध संग सतगुरु शरन, दीन, दया, उपकार॥"

फिर फरमाते हैं—

"सोना काई ना लगे, लोहा घुन नहीं खाय।
बुरा भला जो गुरु भगत, कबहूँ नरक न जाय॥"

अपनी वाणी में स्वामीजी महाराज भी यही जिक्र करते हैं—

"यह देही फिर हाथ न आये। फिरो चौरासी बन में॥
गुरु सेवा कर गुरु रिझाओ। आओ तुम इस ढंग में॥
गुरु बिन तेरा और न कोई। धार वचन यह मन में॥"

फिर फरमाते हैं—

"विन मेहर गुरु नहीं पावे । विन शव्द हाथ नहीं आवे ।।
सुरत खैंच चढ़ाओ गगनी । धुन शव्द सुनो यह करनी ।।"

कबीर साहिब भी फरमाते हैं--

"कबीर गुरु की भगति विन, नार कूकरी होय ।
गली गली घूमत फिरे, टूक न डाले कोय ।।
कबीर गुरु की भगति विन, राजा गदहा होय ।
माटी लदे कुम्हार की, घास न डारे कोय ।।
उज्जल पहने कापड़ा, पान सुपारी खाय ।
कबीर गुरु की भगति विन, वाँधा जमपुर जाय ।।"

फिर फरमाते हैं—

"गुरु विन माला फेरते, गुरु विन करते दान ।
गुरु विन सव निस्फल गया, वूझौ वेद पुरान ।।"

चौथी पातशाही गुरु रामदासजी का कथन है—

"विन गुरु साकत कहु को तरिआ । हौमैं करता भव जल परिआ ।।
विन गुरु पार न पावे कोई । हरि जपिए पार उतारा हे ।।"

और फरमाते हैं--

"जिना सतिगुर पुरष न भेंटिओ । से भाग हीन वस काल ।।
ओ फिर फिर जून भवाइए । विच विसटा कर विकराल ।।"

जिन्हें पूरा सतगुरु नहीं मिला वे बड़े भाग्यहीन हैं । वे हमेशा काल के मातहत या अधीन रहते हैं । उन्हें बार-बार जन्म-मरण के दु:खों में आना पड़ता है, यहाँ तक कि उनको अन्त में गन्दगी के कीड़े तक बनकर दु:ख उठाना पड़ता है । जो पूरे सतगुरु की खोज नहीं करते, वे शव्द या नाम के साथ कभी नहीं जुड़ सकते । वे अपने कर्मों के अनुसार चौरासी के जेलखाने में दु:ख और मुसीवतें भुगतते हैं । असल में वे दुनिया में आकर जीते हुए भी मुर्दे के समान ही रहते हैं ।

गुरु नानक साहिब फरमाते हैं--

"सतगुरु की सेव न कीनिश्रा, हरि नाम न लगिश्रो पिश्रार ।
मत तुम जानो श्रो जीवँदे, श्रो श्राप मारे करतार ।।"

हरएक मनुष्य खुशी श्रौर शान्ति की तलाश करना चाहता है श्रौर भिन्न-भिन्न वस्तुश्रों में, श्रलग-श्रलग स्थानों में जाकर सुख व शान्ति ढूंढता है । लेकिन श्रसली खुशी सिर्फ शब्द में ही है, जिसके साथ हमारा खयाल सिर्फ सतगुरु के ज़रिये ही जुड़ सकता है । वह शब्द बेशक हमारे श्रन्दर है, लेकिन श्रगर हमें किसी सन्त-महात्मा की संगति नहीं मिली है तो हम उस ऊँची, सच्ची श्रौर पवित्र धुन को कभी भी नहीं पकड़ सकते । श्रतएव, हमें चाहिये कि पूरे गुरु की तलाश करें, जो हमारे खयाल को उस शब्द से जोड़कर हमें मालिक से मिला दे । श्रौर कोई वस्तु हमें श्रसली श्रौर सच्ची खुशी नहीं दे सकती । तीसरी पातशाही श्री श्रमरदासजी फरमाते हैं कि मनुष्य श्रगर संसार में श्रनेक प्रकार के भोग भोग रहा है, नौ खण्ड पृथ्वी का राज भी कर रहा है, तो भी उसे बिना सतगुरु के सच्चा सुख नहीं मिल सकेगा श्रौर वह बार बार जन्मता श्रौर मरता रहेगा ।

सांईं बुल्ले शाह क्या ज़ोर के साथ पुकारते हैं—

"बिन मुरशद कामिल बुल्लया तेरी एवें गई इबादत कीती ।।"

फिर कहा है—

"बुल्ला शौह दी सुनो हिकायत, हादी फड़याँ होइ हिदायत ।
मेरा साँईं शाह इनायत, श्रोह लंघावे पार ।।"

सन्तों-महात्माश्रों को हमारे श्रन्दर घोल कर कुछ नहीं डालना है । वह दौलत हमारे श्रन्दर ही है, हमारे लिये ही परमात्मा ने रखी है श्रौर श्रन्दर से ही मिलेगी । सन्त तो सिर्फ युक्ति श्रौर साधन समझाते हैं । जिस तरह विद्या की ताकत हरएक मनुष्य के श्रन्दर जन्म से ही है, लेकिन सोयी हुई है । जब हम स्कूलों-कॉलेजों में जाते हैं, शिक्षकों के श्रादेश में चलते हैं, रातों को जागते हैं, तब वह सोयी हुई ताकत हमारे श्रन्दर से ही जाग उठती है । फिर हम बी. ए., एम. ए. कर लेते हैं, विद्वान बन जाते हैं । जो विद्यार्थी शिक्षकों से डरकर स्कूलों-कॉलेजों

में नहीं जाते, विद्या की ताकत उनके अन्दर भी है, लेकिन वह सोती आई है और सोती ही चली जाती है । जो विद्या प्राप्त कर लेते हैं उनके अन्दर शिक्षक घोलकर तो कुछ नहीं डालते, सिर्फ उनकी तालीम करने से ही विद्यार्थियों की बुद्धि और प्रतिभा तेज हो जाती है । हम सबको यह मालूम है कि दूध के अन्दर घी है, परन्तु अगर हमें युक्ति या तरीका पता न लगे तो हम कभी भी उस घी को दूध में से प्राप्त नहीं कर सकते । घी हमेशा दूध से ही निकलता है, लेकिन युक्ति के बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता ।

गुरु नानक साहिब समझाते हैं—–

"कासट में जिओं है बैसंतर, मत संजम काढ़ कढ़ीजे ।
राम नाम है जोत सभाई, तत गुरुमत काढ़ लीजे ॥"

जिस प्रकार लकड़ी के अन्दर आग होती है, परन्तु वह हमें दिखाई नहीं देती और न हम उस अग्नि से कोई फायदा उठा सकते हैं । जब लकड़ी पर लकड़ी रगड़ते हैं तो इस युक्ति के द्वारा अग्नि भी प्रगट कर लेते हैं और उससे फायदा भी उठा लेते हैं । इसी तरह वह राम नाम की जोत हमारे सबके अन्दर है, परन्तु सतगुरु के उपदेश पर चलकर ही हम उसे प्राप्त कर सकते हैं । गुरु नानक साहिब बड़ी अच्छी मिसाल देकर समझाते हैं—–

"घर रतन लाल बहु माणक लादे मन भ्रमिआ लहि न सकाईऐ ।
जिउँ ओड़ा कूप गुहज खिन काढ़ै तिउँ सतिगुरु वसतु लहाईऐ ॥"

हमारे घर के अन्दर अर्थात् शरीर के अन्दर परमात्मा ने नाम रूपी अपार दौलत रखी है, परन्तु हमारा मन बाहरमुखी होकर भ्रमों में उलझा बैठा है । जब तक हम अपने शरीर में प्रवेश करके खोज नहीं करते, उस दौलत को प्राप्त नहीं कर सकते । आम तौर पर पुराने आबादियों के नीचे बने बनाए कुएं मिट्टी से भर कर दब जाते हैं । हम उन जमीनों पर चलते-फिरते हैं परन्तु हमें मालूम नहीं होता कि

इस जगह कुआ मिट्टी के नीचे दबा हुआ है। लेकिन ओड* लोग हमें विद्या और हुनर के द्वारा बता देते हैं कि अमुक जगह मिट्टी की खुदाई करो तो बना बनाया कुआ मिल जायेगा। ओड लोग कुआ बनाकर उसे मिट्टी से दबाकर हमें पता नहीं देते हैं, उनको यह ज्ञान और इल्म होता है, जिसका फ़ायदा उठाकर हम उस कुए का उपयोग शुरू कर सकते हैं। इसी तरह महात्माओं को भी हमारे अन्दर कोई वस्तु नहीं डालनी है। उनको इल्म और ज्ञान है कि हमारे अन्दर वह परमात्मा है और उससे मिलने का रास्ता भी हमारे अन्दर ही है। सन्त हमें अन्तर में उस रास्ते पर लगा देते हैं। इसलिए हमें सन्तों-महात्माओं की तलाश करनी पड़ती है, उनकी संगति और सोहबत में रहना पड़ता है। हमारा मन हमेशा संगति का असर लेता है। अगर हम शराब पीने वालों की संगति करते हैं तो हमें भी वैसी ही आदत पड़ जाती है। अगर जुआरियों की संगति करते हैं तो वैसे-वैसे ख़याल हमारे मन में भी लहरें उठाना शुरू कर देते हैं। अगर हम मालिक के भक्तों और प्रेमियों की संगति करते हैं तो उनको देखकर हमारे अन्दर भी परमात्मा से मिलने का शौक और प्यार पैदा हो जाता है क्योंकि वे परमात्मा की भक्ति में लगे हुए हैं। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"साकत सूत बहु गुञ्झी भरिआ, किओं कर तान तनीजे ।।
तन्त सूत किछु निकसे नाहीं, साकत संग न कीजे ।।"

अगर सूत में बहुत सारी गुत्थियाँ हों, तो उससे कभी भी कपड़ा नहीं बुना जा सकता। इसी प्रकार, मनमुखों का मन सारी दुनिया में फैला हुआ है। वे दिन-रात इन्द्रियों के भोगों, विषयों-विकारों में ही लगे रहते हैं। उनकी संगति और सोहबत में जाकर हमारा ख़याल किस प्रकार परमात्मा की भक्ति की ओर जा सकता है? फिर उपदेश देते हैं—

*ओड—जल-गणक या पानी-पंडित जो जमीन के अन्दर पानी की उपस्थिति बतलाते हैं।

"साकत नर प्रानी सद भूखे नित भूखन भूख करीजे ।।
धावत धाए, धावे प्रीत माया, लख कोसन को विथ दीजे ।।"

मनमुख लोग हमेशा भूखे रहते हैं । परमात्मा उन्हें जो वे चाहें चीजें बख्श दे, कितनी ही नेक संतान हो, धन-दौलत हो, दुनिया में मान, इज्जत और बड़ाई हो, स्वास्थ्य हो, लेकिन वे फिर भी कभी परमात्मा से परमात्मा को नहीं माँगते वे हमेशा परमात्मा से अपनी दुनिया की इच्छाएँ और तृष्णाएँ पूरी करवाना चाहते हैं । जो लोग हमेशा दुनिया के पदार्थों और शक्लों की ओर ही भागते हैं, गुरु नानक साहिब समझाते हैं कि ऐसे लोगों की कभी भूले भटके भी संगति नहीं करना चाहियें, बल्कि उनसे लाख कोस दूर रहना चाहिये । फिर किसकी संगति करना चाहिये ? आप उपदेश करते हैं—

"गोविन्दजीओ सत संगति मेल हरि धिआइऐ ।।"

कि हे परमात्मा ! सन्तों-महात्माओं की संगति और सोहबत दे, ताकि तेरा पता लगे, तेरी ओर हमारा खयाल जाये । महात्मा हमेशा संगति पर जोर देते हैं, क्योंकि सन्तों के सत्संग में जाकर ही पता लगता है कि आत्मा और परमात्मा का रिश्ता क्या है ? आत्मा और परमात्मा के बीच में रुकावट किस चीज की है ? और वे रुकावटें हमारे अन्दर से किस तरह दूर हो सकती हैं ? महात्मा सत्संग उसको नहीं कहते जहाँ एक कौम दूसरी कौम की निन्दा करती हो, जिस जगह एक मजहब दूसरे मज़हब का गला काटने के उपाय सोचता हो या जहाँ पुराने राजा-महाराजाओं की पुरानी कथा-कहानियाँ सुनाई जाती हों । सन्तों के सत्संग में किसी की भी निन्दा और बुराई नहीं की जाती । वे सिर्फ हमारे अन्दर मालिक से मिलने का शौक और प्यार पैदा करते हैं और हमें मालिक से मिलने का रास्ता, तरीका और साधन बतलाते हैं । यह तो बहुत ही अनुचित बात है कि अगर कोई हमारी बुद्धि और इच्छा के अनुसार परमात्मा की भक्ति नहीं करता तो हम उसे डंडे मारना और तलवारों से डराना शुरू कर दें । बल्कि हमें उन लोगों को प्यार से समझाना चाहिये कि इस रास्ते

पर चलकर हमें यह फायदा प्राप्त हुआ है, अगर तुम्हारी बुद्धि और समझ में आता है तो तुम भी इस रास्ते पर चलकर यह फायदा उठा सकते हो। यह तो वहुत ही बुरी और नामुनासिव वात है कि अगर कोई किसी की अक्ल के अनुसार मालिक की भक्ति नहीं करता तो उसे भला-बुरा कहना शुरू कर दिया जाये। गुरु नानक साहिव समझाते हैं--

"सत संगति कैसी जाणिऐ, जित्थे इको नाम वखाणिऐ।"

असली सत्संग तो पूरे गुरु की मौजूदगी में ही हो सकता है। जब तक पूरा और सच्चा गुरु न हो जो आन्तरिक शब्द का रास्ता वता सके, जो खुद शब्द और परमात्मा के साथ मिला हुआ हो और दूसरों को भी उसके साथ मिलाने की शक्ति रखता हो, तव तक उसको असली सत्संग नहीं कह सकते। गुरु नानक साहिव फरमाते हैं--

"सतगुरु बाझों संगत न होई। विन सवदे पार न पाए कोई।।"

कवीर साहिव भी सत्संग की इस प्रकार महिमा करते हैं--

"कवीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खांड भोजन मिले, साकत संग न जाय।।"

इसलिये आगे समझाते हैं--

"एक घड़ी आधी घड़ी, आधी से भी आध।
कवीर संगत साध की, कटे कोट अपराध।।"

यही स्वामीजी महाराज का उपदेश है--

"मित्र तेरा कोई नहीं संगियन में। पड़ा क्यों सोवे इन ठगियन में।।
चेत कर प्रीत करो सतसंग में। गुरु फिर रंग दें नाम अरंग में।।"

एक और स्थान पर समझाते हैं--

"अटक तू क्यों रहा जग में। भटक में क्या मिले भाई।।
खटक तू धार अव मन में। खोज सतसंग में जाई।।

मौलाना रूम भी अपने कलाम में फरमाते हैं--

"हम नशीनीं साअ्रते वा औलिया, वहतर अज़ सद साला ताअ्रत वेरया।"

कि मालिक के भक्तों और प्यारों की एक घड़ी की भी संगति या सोहवत मन और बुद्धि की सौ साल की बन्दगी से वेहतर है। अगर रास्ता पूरव की तरफ है और हम पश्चिम की तरफ दौड़ रहे हैं तो हम अपनी मंज़िले-मक्सूद से और दूर होते चले जा रहे हैं। हरएक महात्मा सत्संग के ज़रिये ही हमारे अन्दर मालिक से मिलने का शौक और प्यार पैदा करता है।

सन्तों का असली स्वरूप

सन्तों का असली स्वरूप शब्द और नाम ही होता है। वे शब्द या नाम में से ही आते हैं और हमारे ख़याल को शब्द या नाम के साथ जोड़ कर उसी नाम में वापस जाकर समा जाते हैं। मनुष्य का उस्ताद या शिक्षक मनुष्य ही हो सकता है। देवी-देवता किसी ने देखे नहीं, परमात्मा के स्वरूप का किसी को पता ही नहीं, जव तक कोई हमें हमारे जैसा मनुष्य होकर न समझाये तव तक उस मालिक के वारे में हमें कुछ भी समझ नहीं आ सकती। हज़रत ईसा ने उन महात्माओं को 'देह-धारी शब्द' कहा है, अर्थात् वह शब्द जव मनुष्य के जामे में आ जाता है हमारे लिए देह-धारी गुरु वन जाता है। परमात्मा और शब्द एक ही चीज़ है। हज़रत ईसा कहते हैं—

"मैं और मेरे पिता एक ही हैं।" (जॉन १०:३०)

"आदि में शब्द था, शब्द परमात्मा के साथ था और शब्द ही परमात्मा था।" (जॉन १:१)

"और शब्द देहधारी हुआ और हमारे बीच में आकर रहा।"
(जॉन १:१४)

"और यीसू, पवित्र आत्मा (शब्द) से परिपूर्ण, जोर्डन से लौटा।"
(ल्यूक ४:१)

हज़रत ईसा खुद अपने वारे में लिखते हैं, "मैं पिता में से प्रकट हुआ, और इस दुनिया में आया हूँ, मैं दुनिया को छोड़ूँगा और वापस

पिता में समा जाऊँगा (जॉन १६:२८)। आगे कहते हैं, "जब मैं दुनिया में उनके साथ था, मैंने उन्हें तेरे नाम से जोड़े रखा। जिनको तूने मुझे दिया था उनको मैंने सँभाला और किसी को भी नहीं खोया" (जॉन १७:१२)। अर्थात् हे मालिक! जितने समय मैं दुनिया में रहा, मैंने उन सब रूहों की सँभाल की जो तूने मेरे सुपुर्द की थीं और उनमें से किसी को भी गुमराह नहीं होने दिया।

मालिक और मालिक के भक्तों में कोई भिन्नता या भेद नहीं है। वे मालिक की भक्ति करके मालिक का ही रूप हो जाते हैं। श्रुति का कथन है, "ब्रह्म वेत्ता ब्रह्म एव भवति" कि ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही हो जाता है। जिस प्रकार, समुद्र की लहरें समुद्र में से उठती हैं और वापस समुद्र में ही जाकर समा जाती हैं। इसी प्रकार जो लहर का समुद्र के साथ रिश्ता है, वही मालिक के भक्तों का, सन्तों का उस मालिक से रिश्ता होता है। सन्त उस सतनाम के समुद्र की लहर होते हैं जो दुनिया में आकर हमारे ख़याल को शब्द या नाम के साथ जोड़कर, बल्कि हमको साथ ले जाकर, उसी सतनाम के समुद्र में समा जाते हैं। परमात्मा जब हमें देह के बन्धनों से छुड़ाना चाहता है तो वह खुद सतगुरु के अन्दर बैठकर, हमारे ख़याल को शब्द के साथ जोड़कर हमें वापस ले जाकर अपने में ही मिला लेता है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"हरि का सेवक सो हरि जेहा, भेद न जानहु मानस देहा ॥
जिउँ जल तरंग उठहि बहु भाँती, फिर सलिले सलिल समाइंदा ॥"

फिर फरमाते हैं—

"सतगुरु विच आप रखीओन कर परगट आख सुनाइआ ॥"

गुरु और परमात्मा एक ही है। दोनों में सिर्फ इतना ही भेद है कि परमात्मा गुरु का ही वास्तविक स्वरूप है और गुरु मनुष्य के चोले में परमात्मा है। जब तक परमात्मा, गुरु का रूप धारण करके हम मनुष्यों के चोले में हमारी सतह पर नहीं आता, वह हमारे साथ अपना

सम्बन्ध पैदा नहीं कर सकता। परमात्मा गुरु के अन्दर बैठ कर ही बोलता है।

"बिन काया ब्रह्म कैसे बोले। ब्रह्म बोले काया के ओले।।"

गुरु नानक साहिब समझाते हैं--

"गुरु महिं आप रखिआ करतारे।।"

एक अन्य स्थान पर लिखते हैं--

"समुंद विरोल सरीर हम देखिआ, इक वसतु अनूप दिखाई।।
गुरु गोविंद गोविंद गुरु है, नानक भेद न भाई।।"

गुरु साहिब समझाते हैं कि हमने शरीर के अन्दर शब्द की कमाई करके देखा है कि परमात्मा और गुरु एक ही हैं, दोनों में कोई अन्तर नहीं। फिर लिखते हैं, "गुरु परमेसर एको जान।" मौलाना रूम फरमाते हैं--

"दर बशर रू पोश कर्द अस्त आफ़ताब।"

अर्थात् मनुष्य के अन्दर (रूहानी) सूर्य ने खुद को छिपा रखा है। यही बुल्लेशाह समझाते हैं, "मौला आदमी बन आया।" कबीर साहब भी यही फरमाते हैं--

"राम कबीरा एक है, कहन सुनन को दोय।
दोय कर सोइ जाने, जे सतगुरु मिला न होय।।"

बाइबिल में ईसा मसीह कहते हैं, "मुझ में विश्वास करो, मैं पिता में हूँ और पिता मुझ में है।" (जॉन १०:३८ तथा १४:११)। स्वामीजी महाराज भी यही फरमाते हैं--

"राधास्वामी धरा नर रूप जगत में।
गुरु होय जीव चिताये।।"

राधास्वामी से मतलब उस कुल मालिक से है। नामदेवजी कहते हैं--

"आतम राम देह धरिओ, तन मन हरि को देखो ।।
कहत नामदेव बलि बलि जाऊँ, हरि भज अवर न लेखो ।।"

शम्स तब्रेज़ का कथन है—

"आँ पादशाहे आज़म दर वस्त: बूद मुहकम,
पोशीदा दल्के आदम यानी के बर दर आमद "*

सच्चे गुरु हमें बाहरी रीति-रिवाजों या परिपाटियों में नहीं फँसाते, बल्कि अन्दर शब्द की कमाई करने का तरीका बतलाते हैं। पूर्ण गुरु हमें अपने शरीर के अन्दर ही असली घर जाने का रास्ता दिखाते हैं। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"घर महिं घर दिखलाइ देइ सो सतिगुरु पुरख सुजान ।।
पंच सबद धुनकार धुन तहँ बाजै सबद निसान ।।"

यही स्वामीजी महाराज का अनुभव है—

"घर में घर गुरु दिखलावें। धुन शब्द पाँच बतलावें ।।"

महात्मा समझाते हैं कि हमारे निज घर सचखण्ड के मार्ग में हमारे अन्दर पाँच मंज़िलें हैं। हज़रत ईसा ने भी यही इशारा किया है, "मेरे पिता के घर में बहुत से निवास स्थान हैं" (जॉन १४:२)। हरएक मंज़िल का अपना-अपना शब्द या धुन है। सच्चा गुरु हमें उन पाँच मंज़िलों से ले जाकर, पाँचों शब्दों या धुनों से जोड़कर परमात्मा तक पहुँचा देता है। असल में शब्द तो एक ही है, परन्तु हर मंज़िल में उसकी अलग-अलग आवाज़ है और अलग-अलग प्रकाश है। उदाहरण के तौर पर, एक नदी अपने स्रोत से निकलती है और समुद्र में जाकर समाती है। लेकिन, उस नदी की भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न आवाज़ होती है। जहाँ से निकलती है वहाँ उसकी और आवाज़ है, जिस समय बड़ी-बड़ी चट्टानों और खड्डों में से गुजरती है उसकी

---

*उस महान बादशाह ने हमें बाहर निकाल कर दरवाज़ा पक्के तौर पर बन्द कर दिया है। फिर वह आदमी की पोशाक में छिप कर खुद ही दरवाज़ा खोलने आ गया है।

आवाज़ और है, जब वह झरना बनकर गिरती है तो आवाज़ बदल जाती है, जब वह मैदानों में फैलती है उसकी आवाज़ और ही हो जाती है और जब वही नदी समुद्र में समाती है तो आवाज़ भिन्न हो जाती है। परन्तु हर जगह नदी एक ही होती है। कबीर साहिब भी अपने प्रसिद्ध पद "कर नैनों दीदार महल में प्यारा है" में पाँच शब्दों का जिक्र करते हैं और शब्द की साधना पर जोर देते हैं—

"साधो सवद साधना कीजै ।
जा सवद से परगट भये सव, सोई सवद गह लीजै ।।"

मौलाना रूम साहिब फरमाते हैं—

"वहफ्तम फ़लक नौवत पंज यावी,
चों खेमा ज़ शश जहत वरकन्दा वाशी ।"

कि जब तू नीचे के छ: चक्रों से निकल कर सातवें आसमान में पहुँच जायेगा तो वहाँ पाँच नौवतें वजती हुई सुनेगा। इसी प्रकार शम्स तवरेज़ अपने कलाम में लिखते हैं—

"खामोश पंज नौवत विशनौज आसमाने,
काँ आसमाने वेरूँ ज़ाँ हफ्तो ईं शश आमद"

कि खामोशी के साथ आसमान की पाँच नौवतें या धुनें सुन। वह आसमान हमारे सात आसमानों और छ: चक्रों के परे है। फिर एक अन्य स्थान पर लिखते हैं—

"हर रोज़ पंज नौवत बर दरे ऊ,
हमे को वन्द कोसे किब्रयाई ।"

कि हर रोज़ उसके दरवाज़े पर पाँच खुदाई नक्कारे बजते हैं। आनन्द साहिब में हम रोज़ पढ़ते हैं—

"वाजे पंच सवद तित घर सुभागे ।।
घर सुभागे, सबद वाजे, कला जित घर धारीआ ।।
पंच दूत तुध वसि कीते, काल कंटक मारिआ ।।"

कबीर साहिब फरमाते हैं—

"पंजे शवद अनाहद बाजे, संगे सारिंगपानी ।।
कबीरदास तेरी आरती कीनी निरंकार निरवानी ।।"

बेणीजी ग्रन्थ साहिब में फरमाते है—

"पंच सवद निरमाइल वाजे, ढुलके चँवर संख घन गाजे ।।
दल मल दैनहु गुरमुख गियान, बेणी जाचै तेरा नाम ।।"

पूर्ण गुरु

पूरा गुरु वही है जो इन पाँचों शब्दों के द्वारा हमें अपने सच्चे घर ले जाता है । स्वामीजी महाराज भी अपनी वाणी में यही लिखते हैं कि शब्द स्वरूपी, शब्द-अभ्यासी गुरु की ही तलाश करनी चाहिये—

"गुरू सोई जो शब्द सनेही । शब्द बिना दूसर नहिं सेई ।।
शब्द कमावे सो गुरु पूरा । उन चरनन की हो जा धूरा ।।
और पहिचान करो मत कोई । लक्ष अलक्ष न देखो सोई ।।
शब्द भेद लेकर तुम उनसे । शब्द कमाओ तुम तन मन से ।।"

हज़रत ईसा भी यही कहते हैं कि अगर पूरा महात्मा नहीं होगा तो वह खुद अपने शिष्यों के साथ डूब जायेगा । फरमाया है, "अगर अन्धा अन्धे का मार्ग-दर्शन करेगा, तो दोनों गड्ढे में गिरेंगे" (मेथ्यू १५:१४) । गुरु नानक साहिब भी यही समझाते हैं—

"सतगुरु पूरा सबद सुनाए । अनदिन भगति करहु लिव लाए ।।"

पलटू साहिब भी यही कहते हैं—

"धुन आने जो गगन की, सो मेरा गुरुदेव ।"

पूरे और सच्चे गुरु की यही पहचान है कि वे हमारी आत्मा को अनहद शब्द के साथ जोड़ देते हैं । जिसे ऐसा गुरु मिल जाता है वह अपने अन्दर उस शब्द की ऊँची और मीठी आवाज़ को सुनना शुरू कर देता है, जो कि शुरू-शुरू में घण्टे की आवाज़ के समान होती है । गुरु अर्जनदेव लिखते हैं, "घण्टा जाका सुनिऐ चहु कुंट ।" गुरु नानक साहिब पूरे गुरु की महिमा में फरमाते हैं—

"कहु नानक जिस सतिगुरु पूरा। बाजे ताके अनहद तूरा।।"

आगे फ़रमाते हैं—

"अखंड कीर्तन तिन भोजन चूरा। कहु नानक जिन सतिगुरु पूरा।।"

वह अनहद शब्द ही अनन्त और कभी बन्द न होने वाला और ऊँचा और सच्चा संगीत है। वह शब्द ही हमेशा हमारे अन्दर गूँजने वाली ईश्वरीय आवाज़ है। सच्चे गुरु अपने सेवक को उस शब्द को सुनने का भेद और तरीका बतलाते हैं, उस अनहद शब्द को अन्तर में सुनने और उसी में जाकर समाने की रीति बतलाते हैं। गुरु खुद उस शब्द या नाम के साथ जुड़ा होता है। वह हमें भी उस शब्द या नाम के साथ जोड़कर परमात्मा में लीन कर देता है। हज़रत ईसा ने भी यही इशारा किया है कि तुम मेरे अन्दर समाये हुए हो, मैं उस परमात्मा के अन्दर समाया हुआ हूँ, इसलिये तुम भी उस परमात्मा के अन्दर समाये हुए हो। वे इस प्रकार कहते हैं, "जिसने मुझे देखा है उसने पिता को देखा है। क्या तुम सच नहीं मानते कि मैं पिता में और पिता मेरे अन्दर है।" (जॉन १४:९-१०)।

स्वामीजी महाराज लिखते हैं—

"शब्द भेद तुम गुरु से पाओ। शब्द माँहि फिर जाय समाओ।।"

वास्तव में गुरु का असली रूप शब्द ही है। शरीर तो उस शब्द ने सिर्फ़ दुनिया के जीवों को समझाने-बुझाने और चेताने के लिये ही धारण कर रखा है। और न ही जीवों का असली रूप यह शरीर है। यह शरीर तो गुरु और शिष्य दोनों को ही यहीं छोड़ जाना है। शिष्य का असली रूप भी आत्मा है, जो अन्त में जाकर उस शब्द में ही समायेगी। गुरु अपना शरीर छोड़ देने के बाद भी शब्द-स्वरूप से शिष्य की सँभाल करता है। बाइबिल में हज़रत ईसा कहते हैं, "ये बातें मैंने तुमसे कहीं जब कि मैं तुम्हारे साथ मौजूद हूँ। लेकिन वह सान्त्वना प्रदान करने वाला (शब्द) जो कि पवित्र आत्मा है, जिसे पिता मेरे नाम से भेजेगा वह तुम्हें सब बातें सिखाएगा और जो कुछ मैंने तुमसे कहा है वह सब तुम्हें याद दिलाएगा।" (जॉन १४:२५-२६)

अर्थात् जब मैं इस शरीर को छोड़कर चला जाऊँगा, तो वह मालिक मेरे नूरानी स्वरूप में उस शब्द को तुम्हारे अन्दर प्रकट करेगा और फिर वह नूरानी स्वरूप तुम्हारी सँभाल और रहनुमाई करेगा।

गुरु वास्तव में शब्द ही है। जीवों के लिये वह इस दुनिया में शरीर धारण करके उनको मालिक तक पहुँचाने का ज़रिया अथवा माध्यम बनता है और फिर अपना काम पूरा करके उस शब्द में ही जा समाता है। इसी तरह मनुष्य की आत्मा भी उस शब्द की ही किरण है और किसी सच्चे गुरु को पाकर वह भी वापस उस शब्द में ही जा समाती है। गुरु नानक साहिब भी यही फरमाते हैं, "शब्द गुरू सुरत धुन चेला।"

जो सन्त पहले हो चुके हैं वे ज़रूर पूर्ण सन्त थे। परन्तु हम उनसे अब लाभ नहीं उठा सकते। हमें अब किसी जीवित देहधारी महात्मा की खोज करनी पड़ेगी। अगर कोई बीमार आज कहे कि उसे लुकमान हकीम से अपना इलाज करवाना है तो वह अब उसका इलाज करने के लिये नहीं आयेगा। उसे किसी मौजूदा डॉक्टर या हकीम के पास जाना पड़ेगा। अगर कोई सिक्ख कहे कि वह अपने मुकदमे का फैसला महाराजा रणजीतसिंह से करायेगा तो अब महाराजा रणजीतसिंह तो उसका फैसला करने नहीं आ सकते। उसे आज किसी मौजूदा न्यायाधीश या हाकिम की अदालत में ही जाना होगा। अगर कोई स्त्री कहे कि वह राजा विक्रमादित्य से शादी करना चाहती है, तो राजा विक्रमादित्य तो उससे शादी करने नहीं आयेगा। अतएव जिस प्रकार वक्त का हकीम, वक्त का हाकिम और मौजूदा पति ही इस समय काम आ सकते हैं, इसी प्रकार हमें भी मौजूदा गुरु की ही ज़रूरत है और उसी से हमारा काम बन सकेगा। यही इशारा हज़रत ईसा ने बाइबिल में जॉन दि बैपटिस्ट के बारे में किया है—

"वह तो जलता और चमकता हुआ ज्योति-पुंज था और तुम्हें एक वक्त तक उसकी ज्योति में मगन होना मंजूर था।" (जॉन ५:३५)

फिर अपने बारे में हज़रत ईसा खुद बिलकुल साफ लफ्ज़ों में कहते हैं, "जिसने मुझे भेजा है मुझे उसका काम करना ज़रूरी है, जब तक कि दिन है (मेरे जीवन-काल में); रात आती है, जब कोई मनुष्य काम नहीं कर सकता। जब तक मैं दुनिया में हूँ, मैं दुनिया की ज्योति हूँ।" (जॉन ९:४-५)

गुरु की ज़रुरत सिर्फ इसलिये है कि वह हमारे जैसा मनुष्य होकर हमें हर चीज़ अच्छी तरह समझा सकता है। अगर हम मौजूदा गुरु के बगैर ही मालिक की भक्ति कर सकते तो जिन पुराने महात्माओं की हम आज टेक लिये बैठे हैं, वे क्यों देह में आते। वे अपना काम करके फिर उसी परमात्मा के स्तर पर जाकर उसी में समा गये हैं। अब तो हमें उस जीवित देहधारी महात्मा की ज़रूरत है जो हमारे जैसा मनुष्य होकर हमें समझाये। संसार का कोई भी कार्य हम उस्ताद या शिक्षक के बगैर नहीं सीख सकते। हम देखते हैं कि इंजीनियरिंग और डॉक्टरी पर लोगों द्वारा लिखी कितनी खोजपूर्ण पुस्तकें पुस्तकालयों में भरी पड़ी हैं, परन्तु कोई व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा जो उन किताबों को पढ़कर ही इंजीनियर या डाक्टर बन गया हो। पन्द्रह-बीस साल शिक्षकों की संगति करके, मेहनत करके इन विद्याओं की जानकारी प्राप्त होती है और उसके बाद व्यवहारिक अभ्यास भी करना पड़ता है, तब कहीं जाकर इनका कुछ ज्ञान प्राप्त होता है। हमें बचपन से ही हर मंज़िल पर, हर कदम पर किसी शिक्षक या रहबर की ज़रूरत रही है। रूहानियत का विषय तो बहुत ही पेचीदा है। जब तक हमें कोई ऐसा रहबर या मार्गदर्शक न मिले, जो अन्दर की रूहानी मंज़िलों पर गया हो और हम उसके अनुभव से फायदा न उठायें, तब तक हम कभी अन्दर एक कदम भी नहीं जा सकते। बेशक हमारा असली गुरु वह शब्द या नाम है जो कि हमारे सबके अन्दर है। परन्तु फिर भी हम उस शब्द को अपने अन्दर पकड़ नहीं सकते, जब तक वही शब्द या नाम देह धारण करके अर्थात् मनुष्य के चोले में गुरु के रूप में प्रकट होकर हमारी मदद न करे। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"बानी गुरु गुरु है बानी विच बानी अमृत सारे ।
गुरु बानी कहे सेवक जन माने परतख गुरु निस्तारे ।।"

सतगुरु शब्द है और शब्द ही सतगुरु है । उस शब्द के अन्दर ही असली अमृत है । सतगुरु अपने शिष्यों को हमेशा उस शब्द की ओर ही प्रेरित करते हैं । शिष्य उनके आदेश में चलकर अपने ख्याल को शब्द से जोड़ता है । लेकिन मुक्ति केवल देहधारी गुरु ही दे सकता है ।

हम मनुष्य हैं इसलिये हम मनुष्य को ही गुरु चाहते हैं, जिससे हम सब कुछ पूछ सकें, बोल सकें, जिससे प्यार कर सकें और जो हमारे अन्दर उस शब्द की धारा को प्रकट कर सके । गुजरे हुए महात्मा या उनकी लिखी पुस्तकें यह काम नहीं कर सकतीं । वे महात्मा पूर्ण थे और जो उनकी संगति में आये उनको वे फायदा पहुँचा गये । जब तक हमने परमात्मा को नहीं देखा हम उससे किस तरह प्यार कर सकते हैं ? यह मानना कि हम परमात्मा से प्यार कर रहे हैं, सिर्फ हमारे मन की भूल है । इसी प्रकार जो महात्मा पहले हो चुके हैं उनसे हमारा प्यार करना भी मन की एक झूठी और व्यर्थ की कल्पना है, क्योंकि अब वे परमात्मा के पास पहुँच चुके हैं, इस दुनिया में नहीं हैं, हमारा उनके साथ किसी प्रकार भी सीधा सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता । अब तो कोई जिन्दा देहधारी गुरु मिले तब ही हमारा उसके साथ प्यार पैदा हो सकता है और उसका प्यार ही हमें परमात्मा के प्यार में लगा सकता है ।

सच्चे और पूरे गुरु दो प्रकार के होते हैं । एक तो वे जो सीधे सचखंड से आते हैं और जन्म से ही सन्त होते हैं । दूसरे वे जो शब्द का अभ्यास करके अपने गुरु की दया-मेहर से सचखंड तक पहुँच जाते हैं और अपनी जिन्दगी में ही सन्त बन जाते हैं । जब हम सतगुरु की शरण प्राप्त करते हैं तो वे हमें नाम देकर बेफिक्र नहीं हो जाते, बल्कि हमें धुर-धाम पहुँचाने के जिम्मेदार होते हैं । गुरु अर्जुन साहिब फरमाते हैं, "गुरु मेरे संग सदा हैं नाले ।" फिर फरमाते हैं—

"गुरु की दात न मेटे कोई । जिस बखसे तिस तारे सोई ।।"

हज़रत ईसा कहते हैं, "और मैं उन्हें अनन्त जीवन देता हूँ और वे कभी नष्ट न होंगे और कोई उन्हें मेरे हाथ से छीन न सकेगा ।" (जॉन १०:२८)

जिन पर सतगुरु अपनी छाप लगा देते हैं, उनको मृत्यु के बाद यमदूतों के साथ नहीं जाना पड़ता । वे नाम की जो बख़्शिश करते हैं, उसे कोई नहीं छीन सकता । एक अन्य स्थान पर हज़रत ईसा ने ज़ोरदार लफ़्ज़ों में कहा है, "पृथ्वी और आकाश मिट जायेंगे पर मेरे शब्द कभी नहीं मिट सकते ।" (मैथ्यू २४:३५) अर्थात् यह ज़मीन और आसमान चाहे नष्ट हो जायें, लेकिन मेरा दिया हुआ शब्द कभी व्यर्थ नहीं जा सकता । इसी प्रकार स्वामीजी महाराज फरमाते हैं—

"सन्त डारिया बीज घट धरती जिस जीव के ।
को अस समरथ होय, जो जारे उस बीज को ।।"

पाँचवीं पातशाही गुरु अर्जुनदेवजी भी फरमाते हैं—

"मेरा गुरु परमेसुर सुखदाई ।
पार ब्रहम का नाम दृड़ाए अंतहि होइ सखाई ।।"

ऐसे सतगुरु मृत्यु के समय सेवक को खुद लेने आते हैं और यमदूतों के साथ नहीं जाने देते । सतगुरु हमारे सच्चे दोस्त और रक्षक हैं, सिर्फ इस दुनिया में ही नहीं बल्कि मौत के वक्त भी वे ही अपने नूरी स्वरूप में हमारी मदद और रखवाली करते हैं । गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"सजन से ही नाल मै चलदिआँ नाल चलंन ।
जित्थे लेखा मंगीऐ तित्थे खड़े दिसंन ।।"

गुरु अर्जुनदेवजी का कथन है—

"नानक कचड़िआँ सिओ तोड़, ढूँड सजन संत पक्किआँ ।
ओए जीवंदे विछड़हि, ओ मोइआँ न जाई छोड़ ।।"

दुनिया में हमारे बहुत से रिश्तेदार, दोस्त, मित्र हमसे जीते जी

ही अलग हो जाते हैं। आखिर तक तो यदा-कदा ही कोई दोस्त मुश्किल से रहता है। लेकिन, सन्त वे असली दोस्त हैं, जो मृत्यु के समय भी हमें नहीं छोड़ते, बल्कि हमें यमदूतों के पंजों से भी छुड़ाते हैं। ऐसे सतगुरु की शरण में आने के बाद हमारा धर्मराज का हिसाब-किताब खत्म हो जाता है। गुरु साहिब फरमाते हैं--

"धरमराइ दर कागज फाड़े, जन नानक लेखा समझा ।।"

फिर लिखते हैं--

"सिमरत नाम किलविख सब काटे। धरमराइ के कागद फाटे ।।"

और

"धरामराइ अब किआ करैगो जो फाटिओ सगलो लेखा ।।"

बाइबिल में हज़रत ईसा कहते हैं "धन्य हैं वे जो प्रभु का शब्द सुनते और सँभालते हैं।" (ल्यूक ११:२८)

आगे फिर कहते हैं, "जो मेरा शब्द सुनता है........उसका जीवन अनन्त है. . . . . .वह मृत्यु से पार होकर जीवन में प्रवेश कर चुका है" (जॉन ५:२४)। अर्थात्, जिनको मैं उस शब्द से जोड़ देता हूँ वे मौत के पंजे से हमेशा के लिए छूटकर अनन्त जीवन प्राप्त कर लेते हैं।

ऐसे सन्त दुर्लभ हैं, परन्तु वे संसार में हमेशा मौजूद रहते हैं। हरएक युग में सच्चे जिज्ञासुओं को शब्द या नाम का रास्ता बताने के लिये वे आते रहते हैं। गुरु नानक साहिब लिखते हैं---

"जुग जुग सन्त भले प्रभ तेरे ।।"

यह नहीं कि पूर्ण महात्मा किसी खास समय या काल में ही आते हैं या वे किसी खास कौम या खास मुल्क से बँधे हुए होते हैं। हरएक युग में महात्मा होते आये हैं और वे किसी भी कौम, मज़हब या मुल्क में आ सकते हैं। गुरु साहिब फरमाते हैं---

"हर जुगो जुगो जुग जुगो जुगो सद पीड़ी गुरु चलंदी ।।"

"जुग जुग पीड़ी चले सतिगुर की, जिन्ही गुरमुख नाम धिआइआ।।"

एक समय में एक से अधिक महात्मा भी हो सकते हैं। ऐसे महात्मा दुनिया में समाज या जाति पर बोझ बनकर नहीं आते बल्कि अपनी मेहनत की कमाई करके संगत की मुफ्त सेवा करते हैं। गुरु नानक साहिब ने खुद अपने हाथों से खेती की, अपने बाल-बच्चों की परवरिश की और संगत की मुफ्त सेवा की। आप अपनी वाणी में समझाते हैं—

"गुरु पीर सदाए मंगण जाए। ताके मूल न लागो पाए।
घाल खाए कुछ हत्थों दे। नानक राह पछाणे से॥"

कि अगर कोई गुरु और पीर बनकर अपने शिष्यों और सेवकों से माँगता फिरता है, तो उसके पैरों पर मत्था ही मत टेको। जो महात्मा खुद अपनी मेहनत की कमाई करके अपना जीवन बिताता है और संगत की मुफ़्त सेवा करता है, ऐसे महात्मा की खोज करनी चाहिये। हजरत ईसा भी बाइबिल में कहते हैं, "तुम्हें मुफ्त मिला है, मुफ्त ही दो।" (मेथ्यू १०:८)

कबीर साहब के जीवन के वृत्तान्तों से पता चलता है कि आपने सारी उमर कपड़े बुनकर गुज़ारा किया, अपने बाल-बच्चों की परवरिश की और साध-संगत की मुफ़्त सेवा की, हालाँकि शाह बलख बुखारा जैसे आपके सेवक थे जो आपको दुनिया की हर नियामत और आराम दे सकते थे। आप अपनी वाणी में लिखते हैं—

"सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सरबस देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिष का कछू न लेय॥"

फिर फरमाते हैं—

"मर जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहि न आवे लाज॥"

सन्त-महात्मा हमारा रुपया-पैसा दुनिया के फायदे में लगा देते हैं, ताकि हमारी कमाई नेक और सफल हो सके। परन्तु अपने लिये कभी किसी के आगे हाथ नहीं पसारते। स्वामीजी महाराज भी

अपनी वाणी में यही फ़रमाते हैं—

"गुरु नहीं भूखा तेरे धन का । उन पे धन है भक्ति नाम का ।।
पर तेरा उपकार करावें । भूखे प्यासे को दिलवावें ।।"

महात्मा रविदास ने सारी उमर जूतियाँ गाँठकर गुज़ारा किया, हालाँकि राजा पीपा, जो कि एक क्षत्रिय राजा था, आपका सेवक था और मीराबाई भी, जो कि मेवाड़ की रानी थी, आपकी शिष्या थी । मीराबाई के जीवन-वृत्तान्त में आता है कि उसे बिरादरी वालों ने ताने सुनाये कि तू तो महलों में रानी बनी बैठी है और तेरा गुरु जूतियाँ गाँठने का काम करता है । सेवकों के लिये अपने गुरु के बारे में ताना सुनना बड़ा मुश्किल है । उसने एक कीमती हीरा लेकर रविदास जी के पास जाकर अर्ज़ की कि हे गुरुदेव ! लोग मुझे ताने सुनाते हैं । आप इस हीरे को बेचकर अपने लिये एक अच्छा मकान बनाकर इज्ज़त की ज़िन्दगी बसर करें । लेकिन महातमा रविदास ने समझाया कि बेटी ! मुझे तो जो कुछ मिला है वह इन जूतियों के गाँठने और इस कुंड के पानी से मिला है । मुझे इस हीरे की कोई ज़रूरत नहीं ।

महात्मा खुद मिसाल बनकर दिखाते हैं कि किस तरह दुनिया में रहते हुए, दुनिया के काम-काज करते हुए मालिक की भक्ति करना है । वे यह नहीं कहते कि घरबार छोड़कर जंगलों-पहाड़ों की ओर चले जाओ और सन्यास आदि धारण कर लो । जंगलों-पहाड़ों में जाकर हमारे अन्दर मालिक से मिलने का कोई खास शौक और प्यार पैदा नहीं हो जाता, क्योंकि वही इच्छाएँ, वही तृष्णाएँ हमारे अन्दर वहाँ भी दबी रह जाती हैं । जिस समय फिर दुनिया का सामना करना पड़ता है, हमारी वे ही इच्छाएँ हमें उँगलियों पर नचाना शुरू कर देती हैं, बल्कि साधारण मनुष्यों से भी हमारी हालत बुरी और गयी-बीती हो जाती है । हमें दुनिया में किस चीज़ की ज़रूरत है ? शरीर को ढकने के लिए और गरमी व सरदी से बचने के लिए कपड़े की ज़रूरत है, पेट को भोजन की और रहने के लिए किसी कोठरी या मकान की ज़रूरत है । इन ज़रूरतों को हम जितना भी चाहें बढ़ा लें या कम

कर लें; लेकिन जहाँ भी हम जाते हैं, ये ज़रूरतें हमारे साथ ही जाती हैं। जंगलों-पहाड़ों में जाने से क्या होता है। हम सफेद कपड़े उतार देते हैं, भगवे पहन लेते हैं। लेकिन कपड़े की ज़रूरत तो फिर भी महसूस हुई। एक अपनी स्त्री के हाथ का बनाया हुआ भोजन छोड़कर, लोगों के आगे जाकर पेट की खातिर हाथ फैलाना पड़ता है, लेकिन पेट ने खाना तो फिर भी माँगा। अपने घर का सुख और आराम छोड़कर गुफाओं और कन्दराओं का या किसी आश्रम का सहारा लिया। सिर ढकने के लिए किसी न किसी जगह की तो फिर भी जरूरत पड़ी। हमसे उन चीज़ों में से कोई भी चीज़ नहीं छूटी, उलटे हम अपना बोझ समाज पर डाल देते हैं और आलसी बन जाते हैं। लोगों की कई तरह की खुशामदें करनी पड़ती हैं और कई तरह के झूठ-सच अपने पेट की खातिर बोलने पड़ते हैं। महात्मा समझाते हैं कि दुनिया में हमें सूरमा और बहादुर बनकर रहना है। दुनिया में रहते हुए भी दुनिया की गन्दगी और वासनाओं में नहीं फँसना है। गुरु नानक साहिब बड़ी अच्छी मिसाल देकर समझाते हैं––

> "जैसे जल महि कंवल निरालम मुरगाई नैसाणे।
> सुरत शबद भौ सागर तरीऐ नानक नाम वखाणे।।"

जिस तरह कमल का फूल पानी में पैदा होता है पर पानी से बाहर रहता है, हालाँकि उसकी नाल और जड़ पानी के अन्दर होती है, जिस प्रकार मुर्गाबी (जल-कुक्कुट) पानी के अन्दर रहते हुए भी सूखे परों से उड़ जाती है, इसी तरह हमें भी दुनिया में रहते हुए अन्तर में अपनी सुरत को शब्द के साथ जोड़कर इस भव-सागर से पार होना है। एक मक्खी जो शहद के किनारे पर बैठती है शहद का स्वाद भी ले लेती है और सही-सलामत उड़ भी जाती है। लेकिन अगर वह शहद के बीच में बैठ जाये तो तड़प-तड़प कर अपनी जान दे देती है। दुनिया में हमें इस प्रकार रहना है जिस प्रकार एक विवाहिता लड़की अपने माता-पिता के पास रहती है। वह माता-पिता की सेवा भी करती है, अपनी सखियों-सहेलियों के साथ खेलती और उनसे बात-चीत भी करती है और घर का काम-काज भी करती है। लेकिन

माता-पिता के घर रहते हुए भी वह अपने पति को कभी नहीं भूलती। उसका मन सदा अपने पति के चरणों में लगा रहता है। इसी प्रकार हमें भी दुनिया में रहते हुए, दुनिया के लेन-देन का हिसाब खत्म करते हुए अपनी लिव उस मालिक की भक्ति और प्यार में लगाए रखना है। अतएव सच्चे महात्मा हमें यही उपदेश देते हैं कि अपने घरबार में रहते हुए, अपने हाथों की मेहनत की कमाई करते हुए मालिक की भक्ति करो। हमें ऐसे महात्मा की खोज करके उन्हीं से शब्द या नाम का भेद लेना है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"संतहु गुरमुख पूरा पाई, नामो पूज कराई ॥"

सच्ची भक्ति और पूजा

गुरु अमरदासजी का कथन है—

"सच्चे सबद सची पत होई ॥ बिन नामै मुकति न पावै कोई ॥
बिन सतिगुरु को नाउ न पाए प्रभ ऐसी बणत बनाई हे ॥"

अर्थात् मालिक ने अपने मिलने के लिये यही कानून बनाया है कि सच्चे शब्द या नाम की कमाई के बगैर हम कभी भी मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते और सतगुरु के बिना हमें नाम की कमाई करने के तरीके और साधन का पता ही नहीं लग सकता। हज़रत ईसा भी इस ओर इशारा करते हैं, "मैं तुझसे सच कहता हूँ, जब तक मनुष्य दुबारा जन्म नहीं लेता, वह खुदा की बादशाहत नहीं देख सकता" (जॉन ३:३)। नया जन्म लेने से मतलब उस नाम या शब्द से लगना है, जिसे पाकर इस नाशवान संसार से हमारा सम्बन्ध टूट जाता है और हम अपने परम पिता परमात्मा के घर जाने के हक़दार बन जाते हैं। जैसा कि गुरु नानक साहिब ने अपनी वाणी में फरमाया है—

"सतिगुरु कै जनमे गवन* मिटाइआ ॥"

एक और स्थान पर हज़रत ईसा फरमाते हैं, "अब उस शब्द के

* आवागमन

द्वारा जो मैंने तुमसे कहा है, तुम शुद्ध हो" (जॉन १५:३)। अर्थात मैंने जिस शब्द से तुम्हें जोड़ा है उसने तुम्हें पापों के भार से मुक्त कर दिया है।

वह मालिक खुद-मुख्तार है, स्वाधीन है, जो चाहे अपने मिलने का तरीका बना सकता है। इसमें किसी का कोई दखल नहीं। जो भक्ति उस परमात्मा को मंजूर है, वह शब्द या नाम की कमाई है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"बिन नामे होर पूज न होई, भरम भुली लोकाई ।।"

कि दुनिया व्यर्थ भ्रमों में फँस कर इस चौरासी के जेलखाने में भूली हुई भटकती फिरती है। उस नाम के बगैर तो मुक्ति का कोई और रास्ता ही नहीं है। फिर समझाते हैं—

"नाम विसार चले अन मारग, अंत काल पछताई है ।।"

नाम की कमाई करने का रास्ता छोड़ कर अगर हम किसी और रास्ते पर चलने की कोशिश करते हैं तो अन्त में मृत्यु के समय पछताना पड़ता है कि यों ही अपने कीमती समय को व्यर्थ की बातों में नष्ट कर दिया। आप फिर समझाते हैं—

"बिन नामे दर ढोई नाहीं, ताँ जम कर खुआरी ।।"

शब्द या नाम की कमाई के बगैर मालिक के दरबार में जाने की कभी इजाजत नहीं मिलती और यमदूतों के हाथों खराब होना पड़ता है। यही स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"गुरु कहें खोल कर भाई। लग शब्द अनाहद जाई ।।
बिन शब्द उपाव न दूजा। काया का छुटे न कूजा ।।"

शब्द या नाम की कमाई के सिवाय और कोई उपाय और तरीका नहीं है जिससे कि हम देह के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त कर सकें। बाकी जितने भी साधन जप-तप, पूजा-पाठ, दान-पुण्य वगैरह हैं, सब का फल हमें ज़रूर मिलता है। लेकिन उनका फल लेने के लिये हमें फिर से देह के बन्धनों में आना पड़ता है। जैसा कि पहले कहा

जा चुका है, हम राजा-महाराजा होकर आ जाते हैं, सेठ-साहूकार बन जाते हैं, जाति, धर्म और देशों का शासन प्राप्त करके आ जाते हैं। ज्यादा से ज्यादा बैकुण्ठों-स्वर्गों तक पहुँच जाते हैं। लेकिन ये भी भोग-योनियाँ हैं, किसी नियत अवधि के लिये ही हैं। उसके वाद हमें फिर इसी चौरासी के जेलखाने में आना पड़ता है। परन्तु नाम की कमाई हमें हमेशा के लिये देह के बन्धनों से मुक्त कर देती है। गुरु नानक साहिब का कथन है--

"सच्चों उरे सभु को, ऊपर सच आचार ॥"

कि इन सब चीजों का फल शब्द की कमाई के फल के नीचे रहता है यानी हमें काल के दायरे में ही रखता है। शब्द की कमाई का फल सबसे ऊँचा है। वह हमें काल के दायरे से पार ले जाता है; क्योंकि वही चीज़ हमें मन और माया की सीमा से पार ले जा सकती है जो मन और माया की सीमा के परे से आती हो। वह शब्द सचखण्ड से उठता है। काल की सीमा ब्रह्म और त्रिलोकी तक है। इसलिये, हम शब्द को पकड़ कर काल की सीमा से पार चले जाते हैं।

स्वामीजी महाराज फरमाते हैं--

"शब्द कमाई कर हे मीत। शब्द प्रताप काल को जीत ॥
शब्द घाट तू घट में देख। शब्दहि शब्द पीव को पेख ॥
शब्द कर्म की रेख कटावे। शब्द शब्द से जाय मिलावे ॥
शब्द विना सब झूठा ज्ञान। शब्द विना सब थोथा ध्यान ॥
शब्द छोड़ मत अरे अजान। राधास्वामी कहें बखान ॥"

गुरु नानक साहिब भी यही कहते हैं--

"हरि नामे तुल्ल न पुजई, सब डिठी ठोक वजाए ॥"

कि हमने अच्छी तरह ठोक-बजाकर देख लिया है कि कोई वस्तु नाम-भक्ति की बराबरी नहीं कर सकती। फिर आप लिखते हैं--

"सूहट पिंजर प्रेम के बोले बोलणहार ॥
सच चुगे अमृत पीए उड़े ताँ एका वार ॥"

हमारी आत्मा तोते के समान है और यह शरीर एक पिंजरे के समान है। जिस प्रकार तोता पिंजरे से प्यार करके तरह तरह की बोलियाँ बोलता है, इसी तरह हमारी आत्मा भी इस शरीर से प्यार लगाये बैठी है। कभी उसके अन्दर बैठकर रोती है, कभी हँसती है, कभी सुख और कभी दुःख महसूस करती है। अगर हमारी आत्मा इस देह का प्यार छोड़ दे और इसके अन्दर परमात्मा ने जो सच या शब्द का भोजन रखा है, उसको ग्रहण करने लगे और उस शब्द रूपी अमृत को पीना शुरू कर दे तो यह हमेशा के लिये इस देह के बन्धनों से आज़ाद हो जाये। गुरु अर्जुन साहिब एक और बड़ी अच्छी मिसाल देकर समझाते हैं—

"अनिक करम किए बहुतेरे, जो कीजै सो बंधन पैरे ।।
कुरुता बीज बीजै नहीं जम्मे, सभ लाहा मूल गवाइंदा ।।
कल जुग में कीरतन परधाना, गुरमुख जपै लाइ धिआना ।।
आप तरै सगले कुल तारे, हर दरगह पत सिओं जाइंदा ।।"

नाम की कमाई के बगैर जो भी साधन या तरीके हम मुक्ति की प्राप्ति के लिये अपनाते हैं, वे हमें देह के बन्धनों में और ज्यादा फँसा देते हैं। अगर हम धरती में एक बे-मौसम का बीज बोते हैं तो हम कितना भी हल चला लें, अच्छी से अच्छी खाद डाल लें और पानी आदि समय पर दें, तो भी वह फसल हमारे घर नहीं आ सकती, हमारी सब मेहनत, बीज और खर्च फिज़ूल चले जाते हैं। कलियुग में आकर जो मुक्ति प्राप्त करने का असली बीज या तरीका है, वह शब्द या नाम की कमाई है जिसके बारे में हमें सिर्फ पूरे गुरु से ही पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त हो सकती है। स्वामीजी महाराज भी लिखते हैं—

"कलजुग करम धरम नहीं कोई। नाम बिना उद्धार न होई ।।"

गुरु रामदास साहिब भी फरमाते हैं—

"कलजुग राम नाम बोहिथा, गुरमुख पार लंघाई ।।"

कलियग में आकर अगर कोई ऊँचे से ऊँचा, श्रेष्ट से श्रेष्ठ कर्म

है तो वह सिर्फ नाम की कमाई है। इस बात को गुरु अमरदास साहिब और भी अच्छी तरह समझाते हैं---

"इस जग का धरम पढ़ो तुम भाई ।।
पूरे गुरु सब सोझी पाई ।।
ऐथे अग्गे हरि नाम सखाई ।।"

चार युग एक दूसरे के बाद चक्कर लगा रहे हैं। हरएक युग में हमारे जीवन की परिस्थितियाँ बिलकुल अलग-अलग होती हैं। सतयुग में हमारी उम्र बहुत लम्बी थी, हमारा स्वास्थ्य भी अच्छा था और हमारा ख़याल भी दुनिया में इतना फैला हुआ नहीं था। मामूली से इशारे से हमारा ख़याल मालिक की भक्ति की ओर हो जाता था। जैसे-जैसे युग पलटते गये उम्र छोटी होती गई, स्वास्थ्य कमजोर होता गया और ख़याल भी दुनिया में पूरी तरह फैल गया। जो साधन हमें सतयुग में काम देते थे, वे अब कलियुग में काम नहीं दे सकते। कलियुग में तो कोई भाग्यशाली मनुष्य ही सत्तर या अस्सी साल गुजार जाता है, स्वास्थ्य भी इतना कमज़ोर है कि एक डेढ़ घंटे भी हम लगातार मालिक की भक्ति एक आसन पर बैठकर नहीं कर सकते और ख़याल भी इतना फैला हुआ है कि पाँच मिनिट के लिये भी किसी विषय पर विचार करने के लिये हमारा मन पूरी तवज्जह के साथ नहीं टिक सकता। गुरु साहिब समझाते हैं कि अगर हम कलियुग में आकर जिन्दगी के चन्द रोज सुख और शान्ति से गुजारना चाहते हैं और वापस जाकर परमात्मा से मिलना चाहते हैं तो सिर्फ नाम की कमाई का ही रास्ता है। कलियुग में आकर तो महात्माओं ने बड़ी उदारतापूर्वक नाम का प्रचार किया है।

हमारा मन हमें उस शब्द या नाम की कमाई की ओर जाने ही नहीं देता, बल्कि हमेशा पूजा-पाठ, कर्म-कांड, जप-तप, दान-पुण्य आदि में ही लगाये रखता है। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं---

"पूजा करै सभ लोक सन्तहु, मनमुख थाइ न पाई ।।
सबद मरै मन निरमल सन्तहु, एह पूजा थाइ पाई ।।"

हम सब दुनिया के जीव अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उस परमात्मा की भक्ति करने की कोशिश जरूर करते हैं, क्योंकि आत्मा का रुझान अपने असल या मूल की ओर होता है। इसी रुझान के फलस्वरूप हम परमात्मा को ढूंढते हैं, लेकिन मन के पीछे लगकर मालिक की भक्ति करते हैं। यह भक्ति हमें कभी भी हमारे ठिकाने पर नहीं पहुँचाती। हमारा ठिकाना सचखंड है और मन की हद ब्रह्म तक ही रह जाती है। शब्द या नाम की कमाई करने से ही हमारा मन निर्मल होता है। और यह नाम की कमाई ही हमें अपने असली धाम या असली घर सचखंड पहुँचाती है। हरएक भक्ति हमें परमात्मा से नहीं मिलाती, सिर्फ नाम की कमाई ही मालिक तक ले जाती है। स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"अब यह देह मिली किरपा से। करो भक्ति जो करम दहा।।"

अर्थात् यह मनुष्य का चोला परमात्मा की अपार कृपा से प्राप्त हुआ है। इसमें बैठकर वह भक्ति करो जिससे कर्मों का सिलसिला खत्म हो जाये। वह भक्ति सिर्फ नाम या शब्द की कमाई है। गुरु अमरदासजी फरमाते हैं—

"पूजा करे पर बिध नहिं जाने, दूजे भाई मल लाई।"

हमें असली भक्ति करने के तरीके का पता नहीं लगता, गलत रास्ते पर पड़कर मैल और पापों को और इकट्ठा कर लेते हैं। बाइबिल में यही हजरत ईसा ने कहा है, "तू पूजा करता है पर नहीं जानता कि क्या कर रहा है।" स्वामी जी महाराज भी इसी प्रकार समझाते हैं—

"फोकट धर्म पकड़ कर जूझे। बूझे न शब्द जुगत पारा।।
पानी मथे हाथ कुछ नाहीं। क्षीर मथन आलस भारा।।
जीव अभाग कहूं मैं क्या क्या। बाहर भरमे भौ जारा।।
अंतरमुख जो शब्द कमाई। ता में मन को नहिं गारा।।"

जो मालिक की भक्ति का असली तरीका है अर्थात् शब्द की कमाई

है, उसे तो हम पकड़ने की कोशिश नहीं करते, हमेशा बाहर रीति-रिवाजों में ही फँसे और कर्म-कांड में उलझे रहते हैं। इन बातों को स्वामी जी महाराज 'फोकट धर्म' कहकर समझाते हैं। हम छिलकों से प्यार करते हैं, जो उनके अन्दर गूदा या गुर है उसे ग्रहण नहीं करते। स्वामीजी मिसाल देते हैं कि सारी उमर अगर हम पानी बिलोते रहेंगे तो उसमें से कुछ नहीं निकलेगा। लेकिन अगर दूध को मथेंगे तो उसमें से मक्खन प्राप्त कर सकेंगे। इसलिये वे समझाते हैं कि अपने मन को अन्दर शब्द के साथ जोड़ना चाहिये, उससे जुड़कर ही यह निर्मल और पवित्र हो सकता है। गुरु नानक साहिब का कथन है—

"सबद विसारन तिनाँ ठोर न ठांव। भरमी भूले जिऊँ सुँजे घर काँव।।
हलत पलत तिन दोवे गवाए दुखे दुख विहावणिग्रा ।।"

जो शब्द या नाम की खोज नहीं करते उनका न तो इस दुनिया में कहीं ठिकाना है और न ही अगली दुनिया में कोई ठिकाना बनता है। जैसे खाली घर के अन्दर कौआ दिन भर कूदता फिरता है, परन्तु उसे खाने के लिये कुछ नहीं मिलता, इसी प्रकार हम इस चौरासी के जेलखाने में भटकते फिरते हैं। ऐसे लोगों ने अपने दीन और दुनिया दोनों खराव कर लिये। हज़रत ईसा भी शब्द या नाम के महत्व के बारे में कहते हैं कि जो लोग उससे मुख मोड़ लेते हैं और उसकी निन्दा करते हैं उनका गुनाह न इस दुनिया में माफ हो सकता है न अगली दुनिया में।

"जो कोई भी पवित्र आत्मा (शब्द) के विरोध में कुछ कहेगा उसका गुनाह न तो इस लोक में और न परलोक में बख्शा जायेगा।"

(मेथ्यू १२:३२)

जप-तप, पूजा-पाठ, दान-पुण्य, आदि सब का जो भी फल है, वह सब शब्द या नाम की कमाई में आ जाता है, जैसे कि कहावत है, 'हाथी के पाँव में सब का पाँव।' जिस समय हमारी ज़बान पर दिन-रात उस मालिक का नाम चढ़ा होता है यानी हम उस मालिक

के नाम के सुमिरन में लगे होते हैं, तो उससे वड़ा जप और कौन सा हो सकता है। जव हम अपने आपको उस मालिक के हवाले किये बैठे हैं और उसकी रज़ा में रह रहे हैं तो इससे वड़ा और तप क्या हो सकता है। जव हम अपने अन्तर में दिन-रात उस शब्द की वाणी को सुन रहे हैं तो इससे बड़ा और पाठ क्या कर सकते हैं। जब गुरुमुखों के स्वरूप को दिन-रात प्यार में अपने साथ-साथ लिये फिरते हैं तो इससे बड़ी और पूजा क्या हो सकती है। जिस समय उस नाम रूपी अमृत को पीकर मन दुनिया से उदास और उचाट हो जाता है तो इससे बड़ा और वैराग्य क्या हो सकता है। न घर-बार छोड़ने की ज़रूरत है, न बाल-बच्चों को त्यागने की ज़रूरत है, न ही कहीं बाहर जंगलों-पहाड़ों में भटकने की ज़रूरत है। हमें संसार में रहते हुए, संसार का कारोबार अपना फर्ज़ और कर्तव्य समझ कर करते हुए अपने अन्दर ही उस शब्द का अभ्यास करना है। सतगुरु से शब्द या नाम की बख्शिश लेकर अपने अन्दर ही उसका स्वाद प्राप्त करना है। कहीं बाहर भटकने की ज़रूरत नहीं।

नाम की कमाई करके हम जन्म-जन्मान्तरों के देह के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त कर लेते हैं और वापस जाकर परमात्मा से मिल जाते हैं। हमें नाम की कमाई लोगों की मान-बढ़ाई पाने के लिये नहीं करना है, ऋद्धि-सिद्धि और करामातें दिखाने के लिये नहीं करना है। नाम की कमाई हमें मालिक की कृपा और बख्शिश प्राप्त करने के लिये करना है, लोगों को करामातें दिखाकर मालिक के हिस्सेदार बनने के लिये नहीं करना है। इसलिये महात्मा समझाते हैं कि उस नाम की बख्शिश को हमें अपने अन्दर ही हज़म करना चाहिये, इस अनमोल पदार्थ को कौड़ियों की तरह बिखेरना नहीं चाहिये। जितना भी हम उस मालिक की बख्शिश को अपने अन्दर हज़म करेंगे, उतनी ही वह हम पर और बख्शिश व मेहर करेगा। कबीर साहिब फरमाते हैं—

"नाम रतन धन पाय कर, गाँठ बाँध, ना खोल।
नहीं पटन नहिं पारखी, नहिं गाहक, नहिं मोल।।"

उस नाम रूपी दौलत को प्राप्त करके उसे अपने अन्दर इतना दबाकर रखो कि उसकी खुशबू तक बाहर न जाये, क्योंकि न तो दुनिया में कोई उसका अधिकारी है, न किसी को खोटे और खरे की पहचान है और न ही उसका कोई खरीददार है। लोग तो बेटे-बेटियों के याचक हैं, धन-दौलत के अभिलाषी हैं। वे उस नाम रूपी दौलत की कीमत देने को तैयार नहीं। उसकी कीमत क्या देनी पड़ती है? अपने आपको ही मालिक के हवाले करना पड़ता है, जिस हालत में भी वह मालिक रखे उसी हालत में रहते हुए नाम की कमाई करनी पड़ती है। कबीर साहिब फिर समझाते हैं—

"सभी रसायन हम करी, नाहिं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै, कंचन सब तन होय॥"

हमने दुनिया के सब रसायनों को देख लिया, मगर नाम के बराबर कोई रसायन नहीं है। उसकी एक रत्ती भी अगर शरीर में रच जाये तो हमारा शरीर सोना हो जाता है, अर्थात् इस शरीर में आने का उद्देश्य पूरा हो जाता है। इसी प्रकार गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"पारखिआँ वथ समाल लई, गुरु सोझी होई॥
नाम पदारथ अमुलु सा गुरुमुखि पावै कोई॥"

जिनको इस चीज की परख और कदर है, वे इसे बहुत-सँभाल-सँभाल कर रखते हैं। और यह कदर भी सन्तों की संगति में जाकर आती है। अगर हमें कोई कीमती हीरा मिल जाता है तो हम उसे किस तरह सँभाल-सँभाल कर रखते हैं। रुई में लपेट कर मजबूत पेटियों में रखते हैं, उसकी चाबी को हमेशा छाती से लगाये रखते हैं, अपने बीबी-बच्चों तक को पता नहीं देते कि वे कहीं उसे खो न दें। यह एक मामूली दुनिया की चीज़ है, जिसकी कीमत लगाई जा सकती है। लेकिन जिस नाम की कोई कीमत ही नहीं लगाई जा सकती, जिसे महात्मा अमूल्य और अमोलक कहते हैं, जिसे पाकर हम खुद मालिक ही बन जाते हैं, हमें उसकी कितनी सँभाल करनी चाहिये

इसका अन्दाजा आप खुद ही लगा सकते हैं। हज़रत ईसा कहते हैं, "पवित्र वस्तु कुत्तों को न दो, और न अपने मोतियों को सूअरों के सामने डालो। ऐसा न हो कि वे उन्हें पैरों तले रौंद डालें और पलट कर तुम पर हमला कर बैठें" (मेथ्यू ७:६)। अर्थात् उस दौलत का ग्राहक साधारण तौर पर दुनिया में नहीं है, उस बहुमूल्य मोती को जानवरों के आगे मत डालो, वे उसकी कदर नहीं जानते।

स्वामीजी महाराज फरमाते हैं—

"प्रीत प्रतीत गुरु की करना। नाम रसायन घट में जरना।।"

जिस प्रकार रसायन हमारे शरीर के अन्दर जाकर रच जाता है और शरीर की सब बीमारियाँ दूर कर देता है, इसी प्रकार हमको अपने अन्दर नाम को रचाना और हज़म करना है। हमें नाम की कमाई हमेशा परमात्मा के ग्राहक बन कर करना है, परमात्मा से मिलने के लिये करना है। बाल-बच्चों का प्यार प्राप्त करने के लिये नहीं करना है और न ही कोई दुनियावी यश या अधिकार प्राप्त करने के लिये करना है। जितना सच्चा प्यार और इश्क लेकर हम उस मालिक को चाहते हैं उतनी ही वह हम पर अपनी दया-मेहर की बख्शिश करता है। जिस तरह पपीहा स्वाति की बूंद के लिये तड़पता है, दिन रात उसी की रट लगाये रहता है, उसी तरह हमारे अन्दर मालिक से मिलने की व उसके दर्शन करने की तड़प होनी चाहिये। हमें यह सोच कर मालिक की भक्ति नहीं करना चाहिये कि अगर ऐसा नहीं करेंगे तो हमारे कारोवार में घाटा पड़ जायेगा, धन-दौलत में कमी आ जायेगी या दुनिया में मान-सम्मान खो बैठेंगे या और कोई इसी प्रकार का दुनियावी नुकसान हो जायेगा। यह मालिक की भक्ति करने का एक बहुत तुच्छ अथवा घटिया तरीका है। हम मालिक की भक्ति इसलिये करते हैं कि हमारे अन्दर उससे मिलने का सच्चा इश्क और सच्चा प्यार है। दुनियावी लाभ के लिये मालिक की भक्ति करना ऐसा ही है जैसे लोग अक्सर साँप की पूजा करते हैं। वे साँप की भक्ति इसलिये नहीं करते कि उनको साँप से प्यार है। वे तो साँप

के दंश और जहर से बचने के लिये उसकी भक्ति करते हैं। वास्तव में धर्म की बुनियाद प्रेम है, न कि डर। इसलिये हमें अपने अन्दर मालिक का सच्चा इश्क और प्यार पैदा करना चाहिये।

सांसारिक इच्छाएँ

तुलसी साहिब उपदेश देते हैं—

"दिल का हुजरा साफ कर, जाना के आने के लिये।
ध्यान गैरों का उठा उसके बिठाने के लिये।"

दिल तो हमारा दुनिया के पदार्थों और शक्लों के लिय भटकता है, मिलना हम मालिक से चाहते हैं। ये दोनों बातें कैसे हो सकती हैं। मन तो एक ही है। उसे चाहे दुनिया के प्यार में लगा लें चाहे मालिक की भक्ति में। अगर दुनिया में हमारा कोई मामूली-सा रिश्तेदार या प्यारा हमसे कहीं दूर चला जाता है, हमसे बिछुड़ जाता है, तो हम उसकी याद में किस तरह तड़पते हैं, सारी रात जागते और आँसू बहाते रहते हैं। हमने कभी मालिक के बिछोह में एक रात भी जाग कर काटी है? हमारी आँखों में उस मालिक की याद में एक आँसू भी आया है? हम अपने बच्चे को बाहर खेलने के लिये आया के साथ भेज देते हैं। आया तरह-तरह से उसका मन बहलाने की कोशिश करती है, कभी उसे मीठी मीठी कहानियाँ सुनाती है, कभी मिठाई देती है, कभी खिलौनों से दिल बहलाती है। लेकिन फिर भी अगर बच्चा माता-पिता के लिये रोना शुरू कर देता है और आया के किसी भी खिलौने से अपने मन को नहीं बहलाता, तो फिर माता-पिता भी उसकी तड़प बर्दाश्त नहीं कर सकते, फौरन जाकर बच्चे को हृदय से लगा लेते हैं। इसी प्रकार, जब तक हम उस मालिक की रचना के साथ ही मोह और प्यार किये बैठे हैं, अपने मन को इसी में उलझाये बैठे हैं, हम इस रचना का ही हिस्सा बने बैठे हैं। जब इस रचना से अपने प्यार को निकाल कर पूरी तरह से मालिक की ओर लगा देते हैं, तो वह भी दया-मेहर करके हमें अपने साथ ही मिला लेता है।

गुरु अमरदास साहिब फरमाते हैं—

"हरि का गाहक होवै सो लए पाए रतन वीचारा ।।"

जो मालिक के ग्राहक या प्रेमी बन कर उसकी भक्ति करते हैं वे मालिक से मालिक को ही पा लेते हैं । इसलिये हमें दुनिया की इच्छाओं और तृष्णाओं को छोड़कर उस परमात्मा की भक्ति करना चाहिये । पलटू साहिब समझाते हैं—

"नाम नाम सब कहत हैं नाम न पाया कोय ।
नाम न पाया कोय नाम की गति है न्यारी ।
वही शखस को मिले जिन्होंने आसा मारी ।"

नाम रूपी दौलत या धन को पाना इतना आसान नहीं जितना कि लोग समझते हैं । वही शख्स प्राप्त कर सकता है जो अपने अन्दर से कामनाओं और तृष्णाओं को निकाल देता है। तुलसी साहिब का कथन है—

"एक दिल लाखों तमन्ना उस पै और ज्यादा हवस ।
फिर ठिकाना है कहाँ उसके टिकाने के लिये ।"

अर्थात् हमारा मन तो एक है और हजारों लाखों इच्छाएँ दिन रात हम करते रहते हैं । पिछली इच्छाएँ और तृष्णाएँ पूरी नहीं होती हैं कि मन और नई इच्छाएँ पैदा करना शुरू कर देता है । जो इच्छाएँ हमारी मरजी के अनुसार पूरी नहीं होतीं, वे हमारे लिये दु:ख का कारण बन जाती हैं । जब हमारे मन की यह हालत है तो परमात्मा हमारे अन्दर आकर कैसे बिराज सकता है । गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"देंदा दे लैंदे थक पाहि ।। जुगा जुगन्तरि खाही खाहि ।।"

कि परमात्मा देते-देते कभी नहीं थकता, हम दुनिया के जीव लेते-लेते थक जाते हैं । मन जो-जो इच्छाएँ करता है उनको पूरी करने के लिये परमात्मा हमें फिर जन्म दे देता है । हम और इच्छाएँ और तृष्णाएँ पैदा करते हैं । मालिक फिर जन्म दे देता है और उस

जामे में जन्म देता है जिसमें जाकर उन इच्छाओं को अच्छी तरह पूरा किया जा सके। जिस समय हम उन इच्छाओं से तंग आकर परमात्मा से परमात्मा को माँगते हैं तो फिर परमात्मा हमें अपने साथ मिला लेता है। फिर फरमाते हैं—

"आसाँ परबत जेडीयाँ मौत तनावाँ हेठ।"

हमारी इच्छाएँ और तृष्णाएँ तो शायद हिमालय पर्वत से भी बड़ी हैं। अगर परमात्मा हजारों साल की भी उमर दे तो भी शायद उनको पूरा न कर सकें। लेकिन मौत हमारे सिरहाने खड़ी है, पता नहीं जिन्दगी के चन्द और साल मिलने वाले हैं या नहीं और मौत किस वक्त आ जाये—

"जीव सब लोभ में भूले। काल से कोई नहीं बचना ।।
तृष्णा अग्नि जग जारा। पड़ा सब जीव को तपना ।।
नहीं कोई राह बचने की। जलें सब नर्क की अगिना ।।
जलेंगे आग में निस दिन। बहुरि भोगें जनम मरना।
भटकते वे फिरें खानी। नहीं कुछ ठीक उन लगना ।।
कहूं क्या दुक्ख वह भोगें। कहन में आ नहीं सकना ।।"

(स्वामीजी महाराज)

हम सब दुनिया के जीव लोभ और लालच में फँसे हुए हैं और अपनी मौत को भी भूले बैठे हैं। हौमैं या मैं-मेरी के प्रभाव में आकर कई प्रकार के कर्म करते हैं, कई प्रकार की इच्छाएँ और तृष्णाएँ पैदा करते हैं। वे पूरी नहीं होतीं, हम तृष्णा की अग्नि में जलते हैं और उन्हें पूरी करने की कोशिश करते हैं, फलस्वरूप मौत के बाद नरकों की आग में जलना पड़ता है। ये इच्छाएं हमें फिर खींचकर चौरासी के जेलखाने में ले आती हैं। और जो जो दुख और मुसीबतें उन जामों में जाकर हमें भुगतनी पड़ती हैं उनका वर्णन ही नहीं किया जा सकता। इसलिये महात्मा हमें समझाते हैं कि हमेशा मालिक की मौज, मालिक के 'भाणे' और उसके हुक्म में रहना चाहिये। मालिक के भाणे में रहने का मतलब है कि मन में कोई इच्छा और तृष्णा नहीं उठानी चाहिये,

जो कुछ परमात्मा बख्शे, उसकी इच्छा समझकर स्वीकार करना चाहिये । सन्त नामदेवजी का कथन है—

"जौ राजु देहि तै कवन बड़ाई । जौ भीख मंगावहि त किआ घटि जाई ।।"

गुरु अर्जुनदेवजी कहते हैं—

"जे तख्ति बैसालहि तउ दास तुम्हारे, घास बढ़ावहि केतक बोला ।।"

हे परमात्मा ! अगर मुझे दुनिया का राज-पाट भी दे देगा तो भी मुझे तेरी ही महिमा गाना है, तेरी ही भक्ति करना है । अगर मुझे दर-दर ठोकरें खानी पड़ेंगी तो मुझे कौनसा अपने दाता का दरवाजा छोड़ जाना है । जिस प्रकार एक समुद्री जहाज़ के पक्षी को जहाज़ के अलावा और कोई ठिकाना नहीं होता, इसी प्रकार हमारी आत्मा को भी परमात्मा के सिवाय और कोई ठिकाना नहीं है ।

यह बात ध्यानपूर्वक विचार करने की है कि ये इच्छाएँ और तृष्णाएँ कौन पैदा करता है ? ये सब हमारा मन पैदा करता है । और हम पूरी किससे करवाना चाहते हैं ? परमात्मा से । हम मन को कभी समझाने की कोशिश नहीं करते कि तू मालिक की मरज़ी के अनुसार अपने आपको ढालने की कोशिश कर, उसके हुक्म और उसकी मौज में रह । उलटे दिन-रात परमात्मा को समझाने की कोशिश करते हैं कि तू हमारे मन की मरज़ी के अनुसार चलने की कोशिश कर । भक्ति हम परमात्मा की कर रहे हैं या मन की ? स्वामीजी महाराज भी यही समझाते हैं—

"गुरु की मौज रहो तुम धार । गुरु की रज़ा संभालो यार ।।
गुरु जो करें सो हितकर जान । गुरु जो कहें जो चित धर मान ।।"

गुरु नानक साहिब फ़रमाते हैं—

"हरि साचे भावै सा पूजा होवै भाणा मन्न वसाई ।।"

सन्तों ही को मालिक की भक्ति और पूजा का ढंग मालूम है, क्योंकि वे भाणे में रहकर ही मालिक की भक्ति करते हैं । फिर फरमाते हैं—

"भाणे ते सभ सुख पावै संतहु, अंते नाम सखाई ।।"

कि भाणे में ही सुख व शान्ति है और अन्त में मालिक हमारी सहायता करता है । हज़रत ईसा भी यही कहते हैं, "मैं अपनी इच्छा नहीं बल्कि अपने पिता की इच्छा चाहता हूँ जिसने कि मुझे भेजा है ।" (जॉन ५:३०) एक अन्य स्थान पर कहते हैं, "पुत्र स्वयं कुछ नहीं कर सकता, जो पिता को करते देखता है वही करता है ।" (जॉन ५:१९)

एक महात्मा फरमाते हैं—

"जिसको कछु न चाहिए वही शाहंशाह ।।"

जिसको किसी भी चीज़ की ज़रूरत नहीं है, जो हमेशा मालिक के हुक्म में ही रहता है, उससे बड़ा शाहंशाह कौन हो सकता है ।

मुसलमानों में भी दो प्रकार के फ़कीर होते हैं । एक अहले-दुआ[1] और दूसरे अहले-रज़ा[2] । अहले-रज़ा का पद अहले-दुआ से कहीं ऊँचा है । इसलिये हमें मालिक के भाणे, मालिक की मौज में रहते हुए ही नाम की कमाई करना चाहिये ।

मनुष्य-जन्म का उद्देश्य

परमात्मा ने इस सृष्टि की रचना करके उसे चौरासी लाख योनियों में बाँटा है । ऋषियों-मुनियों ने इन चौरासी लाख प्रकार की योनियों का इस प्रकार हिसाब लगाया है—

तीस लाख प्रकार के वृक्ष, पेड़-पौधे, सत्ताईस लाख प्रकार के कीड़े-मकोड़े, चौदह लाख तरह के पक्षी, नौ लाख प्रकार के पानी के जानवर और चार लाख प्रकार के पशु, जिन्न, भूत-प्रेत, देवी-देवता, मनुष्य ।

---

१ अहले-दुआ—जो फ़कीर मालिक से दुआ माँगने या प्रार्थना करने में विश्वास रखते हैं ।

२ अहले-रज़ा—जो मालिक की रज़ा या इच्छा में प्रसन्न रहते हैं और उससे कुछ माँगते नहीं ।

हम अपने कर्मों के अनुसार इस चौरासी के जेलखाने में फँसे हुए हैं, हमारी आत्मा परमात्मा से मिल कर ही इस जेलखाने से निकल सकती है और परमात्मा हमें यह मनुष्य-चोला केवल इसीलिये प्रदान करता है कि हम उसकी भक्ति करके देह के बन्धनों से छुटकारा प्राप्त कर सकें। अगर मनुष्य के चोले में आने का कोई लाभ है तो सिर्फ यही है। इस चोले को यह फख़ या गौरव प्राप्त है कि इसमें बैठकर परमात्मा से मिलाप किया जा सकता है। गुरु अर्जुनदेवजी समझाते हैं—

"लख चौरासी जून सबाई। मानस को प्रभ दई वडिआई ॥
इस पौड़ी ते जो नर चूकै, सो आइ जाइ दुख पाइंदा ॥"

परमात्मा ने मनुष्य के जामे को सब से ऊँचा रखा है। यह इस सीढ़ी का आखरी डण्डा है। अगर कोशिश करते हैं तो मालिक से मिल जाते हैं, अगर पैर फिसलता है तो नीचे फिर चौरासी के जेलखाने में आ जाते हैं। गुरु अर्जुनदेवजी फिर समझाते हैं—

"कई जनम भए कीट पतंगा। कई जनम गज मीन कुरंगा ॥
कई जनम पंखी सरप होइओ। कई जनम हैवर बिरख जोइओ ॥
मिल जगदीस मिलन की बरीआ। चिरंकाल इह देह संजरिआ ॥"

कई जन्म कीड़ों-पतंगों के पाये, कई जन्म हाथी, मछली और हिरणों के पाये, कई जन्म पक्षियों और साँपों के मिले और कई जन्म घोड़ों, पशुओं और पेड़ों-पौधों के पाये। चिर-काल के बाद परमात्मा ने अपनी भक्ति के लिये अब यह मनुष्य का जन्म बख्शा है। हमें इससे पूरा फायदा उठाना चाहिये। मौलाना रूम फरमाते हैं—

"हमचो सब्ज़ा बारहा रोईदा अम,
हफ़्तो सद हफ़्ताद कालिब दीदा अम।" [1]

एक और फ़क़ीर लिखते हैं—

---

१ अर्थात् वनस्पति की तरह मैं कई बार पैदा हुआ हूँ और सात सौ सत्तर शरीर मैंने देखे हैं।

"गाहे नख़ल दर बाग़हा—गाहे सपर बर शाख़हा।"

कि कई बार मैं घास और सब्जी की तरह पैदा हुआ हूँ और सैकड़ों शरीर मैंने देखे हैं। कभी बाग में दरख़्त बना हूँ, कभी दरख़्तों पर फल बनकर लगा हूँ।

इसलिये ऋषियों ने मनुष्य-देह का नर-नारायणी देह कहकर बर्णन किया है, मुसलमान फ़क़ीर इसे अशरफ़-उल-मख्लूकात कहते हैं और यहूदियों का ख़याल है कि परमात्मा ने हमें अपनी ख़ुद की शक्ल पर बनाया है। कबीर साहिब भी यही समझाते हैं—

"कबीर मानस जनम दुलंभ है मिले न बारंबार ॥
जिउँ बन फल पाके भुइँ गिरहि बहुरि न लागहि डार ॥"

जिस तरह वृक्ष से फल पक कर नीचे गिरता है तो वह फिर वृक्ष से वापस नहीं जुड़ सकता, इसी तरह अगर हम मनुष्य के जन्म को अब व्यर्थ गवाँ बैठेंगे तो फिर यह अवसर बार-बार नहीं मिलेगा। स्वामीजी महाराज भी यही उपदेश देते हैं—

"मिली नर देह यह तुमको। बनाओ काज कुछ अपना ॥
पचो मत आय इस जग में। जानियो रैन का सुपना ॥
देह और ग्रेह सब झूठा। भरम में काहे को खपना ॥"

यह इन्सान का जामा परमात्मा ने हमें अपना काम करने के लिये बख्शा है। अपना काम वही है जो हमें वापस ले जाकर परमात्मा से मिलाता है। वह काम परमात्मा की भक्ति है। यह दुनिया एक रात के सपने की तरह है। इसकी कोई असलियत नहीं है। इसे देख कर इसके मोह में नहीं फँसना चाहिये। हमारी जमीन-जायदाद, धन-दौलत, रिश्तेदार और यहाँ तक कि हमारा शरीर भी एक दिन हमारा साथ छोड़ देगा। इसलिये आप उपदेश देते हैं कि इस अमूल्य अवसर से लाभ उठाओ। बाल-बच्चे, दुनिया का खाना-पीना, ऐशो-इशरत आदि सब हमें पिछले जन्मों में भी मिलते आये हैं। अगर कोई ऐसी चीज़ है जो हम पहले नहीं कर सके और केवल

अब कर सकते हैं, तो वह परमात्मा की भक्ति है। लेकिन जिस उद्देश्य और ध्येय की पूर्ति के लिये परमात्मा ने यह मौका बख्शा है, उसे हम इस देह में बैठकर बिलकुल भूल जाते हैं। विषयों-विकारों, शराबों-कबाबों, कौमों, मज़हबों और मुल्कों के झगड़ों और इन्द्रियों के भोगों से हमें फुरसत ही नहीं मिलती। हम समझते हैं 'बाबर ब-ऐश कोस के आलम दोबारा नेस्त' कि मनुष्य का जामा शायद फिर न मिले, अब खूब ऐश कर लें। इस प्रकार हम इस सुनहरी मौके को मुफ़्त हाथ से खो बैठते हैं। हम इन्द्रियों के भोगों में इतने फँस जाते हैं कि अपनी मौत को भी भूल जाते हैं। रोज देखते हैं कि हमारे साथी हमारा साथ छोड़े जा रहे हैं, बल्कि हम खुद उनको श्मशान भूमि में छोड़ कर आते हैं और अपनी आँखों से देखते हैं कि दुनिया की कोई चीज़ उनके साथ नहीं जा रही है। लेकिन हम मन में हमेशा यही सोचते हैं कि मौत शायद औरों के लिये है, हमारे लिये नहीं। गुरु नानक साहिब हमारी हालत का इस प्रकार वर्णन करते हैं—

"धंधै धावत जग बाँधिआ ना बूझै वीचार ।।
जंमण मरण विसारिआ मनमुख मुगध गंवार ।।"

हम दुनिया के जीव हमेशा, दिन-रात पेट के धन्धों में भटकते फिरते हैं और उस ध्येय के बारे में कभी नहीं सोचते जिसके लिये मालिक ने हमें यहाँ भेजा है। हमारे अपने घर में आग लगी हुई है और हमें लोगों की आग बुझाने की फिकर लगी हुई है। अपना घर लुटा जा रहा है, हम दूसरों के घरों की चौकीदारी कर रहे हैं। हम अपना बोझ उठा नहीं सकते, पराये गधे बने बैठे हैं। अपने आपको भी धोखा दे रहे हैं और दुनिया को भी धोखा दे रहे हैं। हम कितने मनमुख, नासमझ और गँवार हैं कि अपने जन्म-मरण को भी भूले बैठे हैं। स्वामीजी महाराज समझाते हैं—

"कहूँ क्या काल जग मारा। जीव सब घेर भरमाई ।।
नहीं कोई मौत से डरता। खौफ जम का नहीं लाई ।।"

यही कबीर साहिब का कथन है—

"क्या लेकर जनम लियो है, क्या लेकर चले जाओगे ।
मुट्ठी बाँध कर जनम लिया है, हाथ पसारे जाओगे ।
यह तन है कागज की पुड़िया, बूँद पड़त गल जाओगे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, इक नाम बिना पछताओगे ।"

आप समझाते हैं कि दुनिया में हम खाली हाथ ही पैदा हुए हैं और खाली हाथ ही यहाँ से चले जायेंगे । न कोई आज तक यहाँ कुछ साथ लेकर आया है और न कभी कोई चीज़ अपने साथ ले जा सकता है । हमारा यह शरीर भी कागज की पुड़िया के समान है । कागज की पुड़िया पर जरा-सा पानी गिरे तो वह गल जाती है । इसी तरह हमारे इस शरीर को भी मौत के बाद अग्नि या मिट्टी के सुपुर्द हो जाना है । यदि मालिक की भक्ति नहीं करेंगे तो आखिर मौत के समय पछताना पड़ेगा । अगर यह दुनिया की धन-दौलत किसी के साथ जाती होती तो दुनिया के लोग अब तक उसे साथ ले गये होते और हमारे हिस्से में शायद कुछ भी न आता । यह तो हमें इसीलिये मिली है कि इसने कभी किसी का साथ नहीं दिया । महमूद गज़नवी ने हिन्दुस्तान पर सत्रह हमले किये और बहुत-सा सोना-चाँदी, हीरे-जवाहिरात यहाँ से लूट कर ले गया । उनको प्राप्त करने के लिये उसने कितने गरीबों का खून किया, कितनी औरतों को विधवा और बच्चों को अनाथ किया । जब उसकी मौत का समय आया तो उसने अपने अनुचरों को हुक्म दिया कि जो कुछ भी मैं हिन्दुस्तान से लूटकर लाया हूँ उसको एक खेमे में लगाकर दिखाओ । जब सारी दौलत को नजर भर कर देखा तो उसकी आँखों में आँसू भर आये । एक ठण्डी आह भर कर उसने सोचा कि जिस दौलत को हासिल करने के लिए इतने ज़ुल्म और अत्याचार किये, आज उसमें से मेरे साथ कोई भी चीज़ नहीं जा रही है । उसने हुक्म दिया कि मौत के बाद मेरे हाथ कफन से बाहर निकाल दिये जायें ताकि लोग देखें कि मैं खाली हाथ जा रहा हूँ और मेरी ज़िन्दगी से सबक लें ।

जो चीजें यहीं रह जाने वाली हैं उनके साथ हम कितना प्यार

करते हैं। उनको प्राप्त करने के लिये दिन-रात भटकते फिरते हैं। जो पापों के किये बिना प्राप्त नहीं होती और मरने पर साथ नहीं जाती उस पर हम जान देते हैं और जो चीज़ वास्तव में हमारी अपनी है और जिसे हमें अपनी बनाना चाहिये, उसके बारे में कभी नहीं सोचते। हज़रत ईसा भी यही कहते हैं, "नाशवान पदार्थों के लिये मेहनत न करो, बल्कि उस पदार्थ के लिए मेहनत करो जो अनन्त जीवन तक रहेगा, जो मनुष्य का पुत्र तुम्हें देगा, क्योंकि पिता परमेश्वर ने उस पर उसके (पुत्र के) लिये मुहर लगाई है।" (जॉन ६:२७)

अर्थात् दुनिया की नाशवान धन-दौलत और पदार्थों को प्राप्त करने की कोशिश न करो, बल्कि उस नाम की दौलत को प्राप्त करो जो कभी नष्ट नहीं होती। जो दौलत अर्थात् नाम मैं तुमको दूंगा उस पर मेरे पिता ने मुहर लगाई हुई है। वह कभी नाश को प्राप्त नहीं होती, क्योंकि मैं उसे मालिक की ओर से तुम्हें दूंगा। स्वामी जी महाराज समझाते हैं--

"भटक भटक नर देही पाई। इन्द्री मन मिल यहाँ मारा॥"

बड़ी मुश्किल से हमें यह मनुष्य का जामा मिला है। लेकिन यहाँ इस जामे में आकर मन के अधीन होकर हम इन्द्रियों के भोगों में फँसे बैठे हैं। जितना भी हमारा दुनिया से ताल्लुक या सम्बन्ध है सब हमारे शरीर के ज़रिए ही है। जब तक हम शरीर में बैठे हैं हमें ये यार-दोस्त, रिश्तेदार, भाई-बहिन और दुनिया की धन-दौलत, कौम, मुल्क वगैरह सब अपने ही नजर आते हैं या कम से कम हम उन्हें अपना बनाने की कोशिश ज़रूर करते हैं। जिस समय शरीर से हमारा साथ छूट जाता है, इन सब चीज़ों से भी सम्बन्ध टूट जाता है। हमें चाहिये कि जब तक परमात्मा ने इस शरीर में बैठने का मौका दिया है, इससे काम ले लें। इसमें बैठकर न तो इसे इतना दुख देना है कि मालिक की भक्ति ही न हो सके और न ही इसे इतने सुख और आराम में रखना है कि हमारा खयाल ऐशो-इशरत की ओर चला जाये। मालिक की भक्ति ही हमारा असली काम है और हमें वही इससे करवाना

है । स्वामी जी महाराज का कथन है—

"धाम अपने चलो भाई । पराये देश क्यों रहना ।।
काम अपना करो जाई । पराये काम नहिं फँसना ।।
नाम गुरु का सम्हाले चल । यही है दाम गँठ बँधना ।।
जगत का रंग सब मैला । धुला ले मान यह कहना ।।"

हमारा यह शरीर काल का पिंजरा है, किराये का मकान है । जितने साँस मालिक ने हमें बख्शे हैं उनको भुगतने के बाद इसे यहीं छोड़ जायेंगे । यह शरीर कभी किसी का साथ नहीं देता । बड़े-बड़े राजा, महाराजा, बादशाह, सुल्तान, शासक, तानाशाह, जिनसे दुनिया थर-थर काँपती थी, आज उनकी कब्रों को हम किस तरह तिरस्कार भरी दृष्टि से देखते हैं । कभी हमारी कब्रों को भी लोग इसी तरह से देखेंगे । लोगों की हड्डियाँ हमारे पैरों के नीचे आकर रौंदी जा रही हैं, किसी दिन हमारी हड्डियाँ भी औरों के पैरों के नीचे आकर रौंदी जायेंगी । लोगों की खाक उड़कर आज हमारी आँखों में गिरती है, किसी दिन लोगों की आँखों में हमारी खाक उड़कर गिरेगी । इसलिये महात्मा हमें बेसुधी की नींद से सचेत करते हैं कि उस समय को अपनी आँखों के सामने रखो, जब कोई भी चीज़ तुम्हारी मदद नहीं करेगी । यह बहिन-भाई, रिश्तेदार, मित्र, परिजन सब हमारे आसपास ही बैठे रह जाते हैं, उन्हें यह भी पता नहीं लगता कि मौत के फ़रिश्ते किस समय और किस रास्ते से आकर हमें पकड़ ले जाते हैं । हमारे रिश्तेदार और सगे-सम्बन्धी रोने-धोने के सिवाय और क्या कर सकते हैं । और वे हमारी क्या मदद कर सकते हैं ! उन सबके साथ हमारा लेने-देने का सम्बन्ध है, गरज़ का प्यार है, स्वार्थ का लगाव है । कोई पत्नी बनकर आ गई, कोई पति और बाल-बच्चे बनकर आ गये । उनसे हमारा जो भी हिसाब-किताब होता है, उसके पूरे हो जाने पर कभी वे हमें छोड़कर चले जाते हैं, और कभी हम उनको छोड़कर चल देते हैं । जिस तरह एक स्टेज या रंग मंच पर हरएक अभिनेता अपना-अपना पार्ट अदा करता है, कोई राजा का, कोई रानी का, कोई किसी दुष्ट पात्र का, इसी तरह

यह दुनिया भी एक बहुत बड़ी स्टेज है और हम सब दुनिया के लोग यहाँ अपने-अपने कर्मों के अनुसार अपना-अपना पार्ट अदा कर रहे हैं। असल में हमारा किसी के साथ कोई रिश्ता या सम्बन्ध नहीं है। जिस तरह नाटक के समाप्त हो जाने पर, रंगमंच से उतरने के बाद न कोई राजा होता है, न कोई रानी, इसी तरह इस देह को छोड़ने के बाद हमारा सम्बन्ध भी किसी से नहीं रहता। जिस समय किसी को मौत आती है, उसके रिश्तेदार रोते हैं लेकिन जिस जगह जाकर वह फिर जन्म लेता है, वहाँ खुशियाँ मनाई जाती हैं। आज जबकि हम अपने पिछले जन्मों के रिश्तेदारों को बिलकुल भूले बैठे हैं तो जिनके लिये हम आज भटकते फिरते हैं, तरसते और तड़पते हैं, उनको अगले जन्मों में क्या याद रख लेंगे। गुरु नानक साहिब फरमाते हैं--

"मात पिता माइआ देह सि रोगी, रोगी कुटंब संजोगी ।।"

कि माता-पिता को भी हमारा साथ छोड़ देना है। जो कुछ भी हम दुनिया में देख रहे हैं इसे भी हमारे साथ नहीं जाना है। हमारे रिश्तेदार भी रोगी हैं अर्थात् नाशवान हैं। यहाँ तक कि जिस शरीर में हम बैठे हुए हैं, जिससे इतना प्यार रखते हैं और जिसके बनाव- शृंगार में हम क्या-क्या नहीं करते, वह भी यहीं रह जाता है। स्वामीजी महाराज समझाते हैं--

"धन दारा सुत नाती कहियन। यह नहिं आवें काम ।।
स्वाँस दुधारा नित ही जारी। इक दिन खाली चाम ।।
मशक समान जान यह देही। बहती आठों जाम ।।"

कोई भी रिश्तेदार मौत के समय काम नहीं आता। जिस प्रकार एक तालाब में कितना भी पानी क्यों न भरा हो, उसमें एक नल लगा कर खोल दें तो पूरा तालाब खाली हो जाता है। इसी प्रकार हमारा यह शरीर साँसों का भंडार है। जब तक हमें साँस आ रही है, हम किस तरह इस दुनिया में एक-दूसरे के लिये भाग-दौड़ कर रहे हैं। दुनिया में अपने पेट के लिये और लोगों के लिये हम क्या नहीं करते।

परन्तु हम उस समय को भूल जाते हैं जिस समय यह साँसों का भंडार समाप्त हो जायेगा। लोग हमारी मौत पर तार और टेलीफोन करेंगे, सगे-सम्बन्धी इकट्ठे होकर इस शरीर को, जिससे हमें इतना प्यार था, या तो अग्नि के सुपुर्द कर देंगे या मिट्टी में दफना देंगे। स्वामी जी महाराज एक और अच्छा उदाहरण देकर समझाते हैं कि जब तक एक चमड़े की मशक में हवा भरी रहती है, वह पानी के ऊपर तैरती रहती है, हम भी उसका सहारा लेकर पानी पर तैरते हैं। लेकिन जब उस मशक से हवा निकल जाती है तो वह पानी की तह में बैठ जाती है और जो उसका सहारा लेता है वह भी गोते खाने लगता जाता है। इसी तरह जब तक हमारे शरीर के अन्दर साँस आ रही है, हम दुनिया के काम-काज करते हैं और लोग भी हमारा आसरा लेकर अपना वक्त गुजार रहे हैं। परन्तु जब इस मशक अर्थात् शरीर से हवा निकल जाती है तो यह शरीर भी निस्सार हो जाता है और जो इसका आसरा लेकर वक्त काट रहे हैं वे भी रोना-पीटना शुरू कर देते हैं और घबरा जाते हैं। महात्माओं के समझाने का सिर्फ इतना ही मतलब है कि हम उस मौत के वक्त को अपनी आँखों के सामने रखें, उससे पहले-पहले अपना रूहानी सफर तय कर लें और मंज़िले-मक्सूद पर पहुँच जायें। स्वामी जी महाराज समझाते हैं——

"कुटुम्ब परिवार मतलव का। विना धन पास नहिं आई॥"

हमारे जो भी रिश्तेदार, यार-दोस्त हैं ये सव गरज़ और स्वार्थ के साथी हैं। इनके मोह और प्यार में फँसकर हम मालिक को भूले बैठे हैं, इस शरीर में आने का उद्देश्य और मतलब भूले बैठे हैं। जव हमारे पास धन-दौलत नहीं रहती तो हमको अपने भी छोड़ जाते हैं।

नम्रता

सव महात्मा हमें यही उपदेश देते हैं कि इस मनुष्य जन्म में आकर अपनी देह के अन्दर मालिक की खोज करो। लेकिन हम देह के अन्दर मालिक को ढूंढने के वजाय उल्टे इस देह के ही मान और अहंकार में फँस जाते हैं। जरा गौर करके देखें कि हम इस शरीर

में बैठकर किस चीज़ का मान और अहंकार करते हैं । क्या जवानी का मान करते हैं ? हमने किसी का बुढ़ापा नहीं देखा ? क्या हमें भी इस बुढ़ापे की उमर में नहीं पहुँचना है ? स्वास्थ्य और तन्दुरुस्ती का गरूर करते हैं ? क्या कभी अस्पतालों में बीमारों की हालत नहीं देखी ? रुपये पैसे का अहंकार करते हैं ? क्या बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं, सेठों-साहूकारों को कंगालों की तरह सड़कों पर भटकते नहीं देखा या सुना ? क्या हम दुनिया की हुकूमत या इज्ज़त और मान-प्रतिष्ठा का अहंकार करते हैं ? बड़े-बड़े लीडरों, नेताओं और ताना-शाहों को फाँसी के तख़्तों पर चढ़ते नहीं सुना या गोलियों के शिकार बनते नहीं देखा ? रातों-रात अचानक हुकूमत के तख़्ते पलट जाते हैं, दूसरी पार्टी उनको उठा कर जेलखानों में डाल देती है या तोपों का शिकार बना देती है । फिर हम गरूर और अहंकार किस बात का करते हैं ? कबीर साहिब समझाते हैं––

"लकड़ी कहे लुहार को, तू क्या जारे मोहिं ।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं जारूँगी तोहिं ।।
माटी कहे कुम्हार को, तू क्या रूँदे मोहिं ।
इक दिन् ऐसा होयगा; मैं रूँदूँगी तोहि ।।"

लुहार लकड़ी को जला-जलाकर उसके कोयले बनाता है, पर लकड़ी उससे कहती है कि कभी उस वक्त को भी अपनी आँखों के आगे रखकर सोच, जब मैं तुझे साथ लेकर तेरे भी इसी तरह कोयले बना दूँगी । कुम्हार मिट्टी को रौंद-रौंद कर उसके बर्तन बनाता है, लेकिन मिट्टी उससे कहती है कि एक दिन मैं भी तुझे अपने साथ लेकर इसी तरह रूँध डालूँगी । स्वामी जी महाराज भी यही फरमाते हैं––

"मन रे क्यों गुमान अब करना ।
तन तो तेरा ख़ाक मिलेगा चौरासी जा पड़ना ।।"

महात्मा इसलिये हमें उपदेश देते हैं कि मन में हमेशा नम्रता, विनय और दीनता रखना चाहिये । जितनी नम्रता और दीनता हमारे अन्दर होगी, उतना ही हमारा ख़याल मालिक की भक्ति की

ओर जायेगा और हमें मालिक की बख्शिश मिलेगी। बाइबिल में भी इस नम्रता और दीनता के बारे में लिखा है—

"धन्य हैं वे जो अन्तर में दीन हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है।" (मेथ्यू ५:३)

"जो नम्र हैं वे धन्य हैं, क्योंकि वे ही पृथ्वी के अधिकारी होंगे।" (मेथ्यू ५:५)

"जो भी अपने आपको इस बालक के समान छोटा करेगा, वह स्वर्ग के राज्य में सबसे बड़ा होगा" (मेथ्यू १८:४)। और फिर कहते हैं, "मैं तुमसे सच कहता हूँ कि अगर तुम बदल कर छोटे बच्चों के समान नहीं बनते, तुम प्रभु के दरबार में प्रवेश नहीं कर सकते।"
(मेथ्यू १८:३)

स्वामी जी महाराज का भी यही उपदेश है—

"दीन गरीबी चित्त में धरना। काम क्रोध से बचना॥"

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब प्रार्थना करते हैं—

"कहु नानक हम नीच करंमा। सरण पड़े की राखहु सरमा॥"

इस कोटि के महात्मा होकर अपने बारे में कितने नम्र और दीनतापूर्ण शब्दों का उपयोग करते हैं। गुरु नानक साहिब अपनी वाणी में कई जगह अपने आपको 'लाला गोला' (सेवक और गुलाम), दासों का दास, 'नीच करम्मा' कहते हैं। हमें इन महात्माओं के जीवन से शिक्षा लेनी चाहिये जो धुर-धाम पहुँच कर, कुल-मालिक बन कर भी डींग नहीं मारते। हमारे हाथ कोई साधारण सी भी सत्ता या हुकूमत आ जाये तो हम इन्सान को इन्सान ही नहीं समझते। कबीर साहिब समझाते हैं—

"बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जब मन खोजा आपना, मुझसा बुरा न होय॥
कबीर सब से हम बुरे, हम तें भल सब कोय।
जिन ऐसा करि बूझिया, मीत हमारा सोय॥"

महात्माओं का हमें समझाने का सिर्फ यही मतलब है कि घमण्ड और अहंकार किसी चीज़ का नहीं करना चाहिये। मनुष्य के चोले में बैठकर मन में नम्रता, दीनता और आजिज़ी रखना चाहिये और नाम की कमाई करना चाहिये, क्योंकि नाम की कमाई ही हमारा साथ देगी और तभी हमारा देह में आने का ध्येय पूर्ण हो सकेगा। दादू साहिब का कथन है—

"क्या मुख ले हँस बोलिए, दादू दीजे रोय।
जनम अमोलक आपना, चले अकारथ खोय ।।"

यही महात्मा चरनदासजी अपनी वाणी में लिखते हैं—

"हाथी घोड़े धन घना, चन्द्रमुखी बहु नार।
नाम बिना जमलोक में, पावत दुःख अपार ।।"

यही गुरु नानक साहिब लिखते हैं--

"बिन नामै को संग न साथी, मुकते नाम धिआवणिआ ।।"

परमात्मा की कृपा

जब हमारे अन्दर नम्रता और दीनता आयेगी तो हमारा ध्यान मालिक की भक्ति और प्यार की ओर जायेगा। यह केवल संतों की संगति के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। और ऐसे सन्तों की संगति मालिक की बख्शिश और कृपा से ही मिलती है, बल्कि सच तो यह है कि मालिक बख्शिश करे तब ही हमारा ख़याल उसकी भक्ति और प्यार की ओर जाता है। गुरु अमरदासजी फरमाते हैं--

"हरि साचे भावै सा पूजा होवै भाणा मन वसाई ।।"

अर्थात् उस मालिक को मंजूर होगा तब ही हम उसकी भक्ति कर सकेंगे। हम दुनिया के जीव अन्धे हैं। अन्धे की ताक़त नहीं कि वह आँखों वाले को पकड़ सके, जब तक कि आँखों वाला अन्धे को आवाज़ देकर पास नहीं बुलाता या अपनी अँगुली पकड़ा कर उसे अपने साथ नहीं ले चलता। हम दुनिया के जीव इस माया के जाल में फँसकर मालिक को भूलकर बिलकुल अन्धे और बहरे हो गये हैं।

मालिक ही कृपा करे तो हमारा ख़याल उसकी भक्ति की ओर जा सकता है। गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"जीवण मरणा सब तुधै ताईं। जिस बखसे तिस दे वडिआई।।"

इसी प्रकार कबीर साहिब फरमाते हैं—

"साहिब से सब होत है, बन्दे ते कछु नाहिं।
राई ते परवत करै, परवत राई नाइँ।।
ना कछु किया न करि सका, न करने जोग सरीर।
जो कछु किया साहिब किया, तातें भया कबीर।।
न कछु किया न कर सके, नहि कछु करने जोग।
जो कछु किया सो हरि किया, दूजा थापे लोग।।
जो कछु किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहिं।
कहौं कहीं जो मैं किया, तुम ही थे मुझ माहिं।।"

इसी तरह हज़रत ईसा भी बाइबिल में कहते हैं, "इसीलिये मैंने तुमसे कहा था कि कोई भी मनुष्य मेरे पास नहीं आ सकता, जब तक कि मेरे पिता से उसे यह बख़्शिश न मिली हो।" (जॉन ६:६५) "कोई मनुष्य मेरे पास नहीं आ सकता जब तक कि पिता जिसने मुझे भेजा है उसे खींच न ले।" (जॉन ६:४४) अर्थात् जीव की कोई ताक़त नहीं कि वह मालिक की ओर आये, जब तक कि मालिक ही उस पर यह बख़्शिश न करे।

पाँचवीं पातशाही गुरु अर्जुनदेवजी 'बारहमाहा' शुरू करने से पहले लिखते हैं—

"किरत करम के बीछुड़े करि किरपा मेलहु राम।।"

हे परमात्मा! हम अपने कर्मों के कारण तुझसे बिछुड़े हुए फिर रहे हैं। हमारे अपने वश में नहीं कि तुझ तक पहुँच सकें। तू ही हम पर दया मेहर और बख़्शिश करे तो हम तुझ तक पहुँच सकते हैं। आगे फ़रमाते हैं—

"आपण लीआ जे मिलै, विछुड़ि किउं रोवंन ।
साधू संग परापते नानक रंग मानंन ।।"

हे परमात्मा ! अगर हमारे अपने वश में हो कि तुझ तक पहुँच सकें, तो किसका दिल करता है कि तुझ से विछुड़ कर इस चौरासी के जेलखाने में भटकता फिरे । हमारे वश में नहीं कि हम अपने आप तुझ तक पहुँच सकें ।

हज़रत ईसा भी यही कहते हैं कि परमात्मा ने ही मेरे सुपुर्द जो जीव किये हैं, मैं उनके लिये दुआ करता हूँ न कि तमाम दुनिया के लिये । उनका कथन है, "मैं दुनिया के लिये विनती नहीं करता, बल्कि सिर्फ उनके लिये करता हूँ जिन्हें तूने मुझे दिया है, क्योंकि वे तेरे हैं ।" (जॉन १७:९)

गुरु नानक साहिब ने तो मालिक के बारे में यहाँ तक कहा है--

"खोटे खरे तुध आपि उपाए । तुध आपे परखे लोक सबाए ।।
खरे परखि खजानै पाए, खोटे भरम भुलावणिआ ।।"

हे परमात्मा ! सब दुनिया के जीव तूने आप पैदा किये हैं । खोटे भी तूने ही पैदा किये हैं और खरे भी तूने ही बनाये हैं । और तू खुद ही दोनों को परखने बैठ गया है कि कौन खरा है और कौन खोटा । जिनको तू खुद अपनी परख के क़ाबिल बना लेता है उनको तू अपने खजाने में दाखिल या जमा कर लेता है । बाकी सब भ्रमों में फँस कर भूले फिरते हैं ।

परमात्मा जब भी दया-मेहर करता है सन्तों-महात्माओं के ज़रिये ही करता है, बल्कि खुद मनुष्य के चोले में बैठ कर हमारे अन्दर अपने मिलने का शौक और प्यार पैदा करता है, हमसे अपनी भक्ति करवाकर अपने साथ मिला लेता है । तीसरी पातशाही गुरु अमरदासजी लिखते हैं--

"करम होवै सतगुरु मिलाए । सेवा सुरत सबद चित लाए ।।"

मालिक ने कृपा की तो हमें सतगुरु की सोहबत और संगति

प्राप्त हुई। उसके बाद हम पर सतगुरु की बख्शिश हुई और उन्होंने हमारी सुरत या आत्मा को शब्द से जोड़ दिया, जिसका अभ्यास करके दुनिया से हमारा मोह निकल जाता है और मालिक का प्यार पैदा हो जाता है। हज़रत ईसा भी कहते हैं, "तुमने मुझे नहीं चुना, बल्कि मैंने तुम्हें चुना है और तुम्हें आदेश दिया है ताकि तुम जाकर फल लाओ।" (जॉन १५:१६)। फिर फरमाते हैं, "जब तक मनुष्य को परमात्मा की ओर से न दिया जाये, तब तक वह कुछ नहीं पा सकता।" (जॉन ३।२७) अर्थात् जीव के वश में कुछ नहीं जब तक कि उस पर मालिक और गुरु की बख्शिश न हो।

इसी प्रकार गुरु नानक साहिब समझाते हैं—

"आप करता करे कराए, आपे सबद गुरु मन वसाए॥"

जो कुछ भी करता है वह परमात्मा खुद करता है। जब वह हमें अपने साथ मिलाना चाहता है तो सतगुरु के ज़रिये हमारे ख़याल को शब्द से जोड़ देता है। सन्त-महात्मा मालिक के भेजे हुए ही आते हैं और जिन जीवों पर मालिक की बख्शिश होती है उन्हीं को अपने साथ लेकर मालिक के अन्दर समा जाते हैं। हज़रत ईसा ने भी इसी का ज़िक्र किया है, "मैं उनमें और तू मुझ में, कि वे पूर्ण होकर एक हो जावें और संसार जान ले कि तूने मुझे भेजा है, और उन्हें प्यार किया है जैसा कि तूने मुझे प्यार किया है।" (जॉन १७:२३)।

सन्तों का संदेश

हरएक महात्मा का केवल यही उपदेश है कि परमात्मा एक है, हमारी आत्मा उस परमात्मा का अंश है, उससे मिलकर ही हम जन्म-मरण के दुखों से बच सकते हैं। वह परमात्मा हरएक के शरीर के अन्दर है और मनुष्य के चोले में आकर ही हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। हमारे अन्दर हमारे मन की रुकावट है जिसके कारण हम उस परमात्मा को अपने अन्दर देख नहीं सकते। यह मन की रुकावट शब्द या नाम की कमाई के द्वारा ही हमारे अन्दर से दूर होती है। वह नाम या शब्द और मालिक से मिलने का रास्ता भी खुद मालिक

ने हमारे अन्दर ही रखा है। सन्तों की संगति से ही हम अपने अन्दर उस रास्ते को ढूंढ सकते हैं और नाम या शब्द से अपना खयाल जोड़ सकते हैं।

इसी नाम या शब्द को हज़रत ईसा ने 'वर्ड' (शब्द) और 'चेतन जल' कहा है। वे कहते हैं, "जो कोई उस जल में से पियेगा, जो मैं उसे दूंगा, वह फिर कभी प्यासा न होगा। लेकिन वह जल जो मैं उसे दूंगा, उसके अन्तर में एक जल का सोता बन जायेगा जो अनन्त जीवन में उमड़ पड़ेगा।" (जॉन ४:१४)

गुरु नानक साहिब इसी को अमृत कहकर समझाते हैं। मुसलमान फ़कीर इसे आबे-कौसर और आबे-हयात कहते हैं, क्योंकि इसको प्राप्त करके हम हमेशा के लिये जीवित या जागृत हो जाते हैं और देह के बन्धनों से बच जाते हैं। ऐसे अमृत को प्रदान करने वाले सन्तों की संगति हमें हमेशा परमात्मा की दया-मेहर और बख्शिश से ही प्राप्त हो सकती है। सन्त दुनिया में मालिक से मिलने की कोई नई फिलॉसॉफी, शिक्षा या रीति लेकर नहीं आते। सब सन्त उस एक ही फिलॉसॉफी और सिद्धान्त को समझाते हैं। लेकिन हम उनके जाने के बाद बाहर-मुखी हो जाते हैं, असलियत और सच्चाई को भूल जाते हैं। फिर कोई और महात्मा किसी और जगह आकर हमें उसी असलियत की याद दिलाता है और हमारे विचारों को वहमों और भ्रमों से निकालता है। यह मालिक ने अपने मिलने का कुदरती कानून व तरीका बना रखा है। वे महात्मा इस कुदरती कानून के बारे में ही याद दिलाते हैं, अपने पास से कोई नई शिक्षा नहीं देते। हज़रत ईसा बाइबिल में कहते हैं, "क्योंकि मैंने अपनी ओर से कुछ नहीं कहा, बल्कि पिता जिसने मुझे भेजा है उसी ने मुझे हुक्म दिया है कि मैं क्या कहूँ और क्या समझाऊँ।" (जॉन १२:४६)

एक और स्थान पर कहते हैं, "मेरा उपदेश मेरा नहीं, बल्कि मेरे भेजने वाले का है।" (जॉन ७:१६)

सन्तों की शिक्षा का आधार उनका निजी अनुभव होता है।

वे ग्रन्थ-पोथियाँ पढ़कर सुनी-सुनाई बातें नहीं करते । वे तो जो कुछ आँखों से देखते हैं और जो उनका अपना अनुभव होता है, उसी का वर्णन करते हैं ।

गुरु नानक साहिब फरमाते हैं—

"संतन की सुन साची साखी । सो बोलहिं जो पेखहिं आँखी ।।"

फिर समझाते हैं--

"जैसी मै आवै खसम की वाणी, तैसड़ा करी गिआन वे लालो ।।"

महात्मा जो भी ज्ञान परमात्मा से लेकर आते हैं, वही हमें समझाते हैं । दादू साहिब भी यही कहते हैं—

"दादू देखा दीदा सब कोई कहत शुनीदा ।"

इसी प्रकार तुलसी साहिब फरमाते हैं--

"निज नैना देखा हिये आँखी, जस जस तुलसी कह कह भाखी ।"

अर्थात् मैंने जो कुछ आँखों से देखा है, वही समझा रहा हूँ । दुनिया के लोग तो सुनी सुनाई बातें करते हैं ।

हजरत ईसा भी यही कहते हैं, "मैं तुझसे सच कहता हूँ कि हम जो जानते हैं वही कहते हैं और जिसे हमने देखा है उसी की गवाही देते हैं ।" (जॉन ३:११)